५० वर्षों से प्रकाशित

कौल-कल्पतरु

चण्डी

साधन-माला

श्रीत्रिपुर-भैरवी कवच

श्रीवाराही कवच

श्री कार्तवीर्यार्जुन यन्त्र-साधना

गन्धर्व-राज विश्वावसु पूजा-पद्धति

एवं

पञ्च-मुखी हनुमत्स्तोत्र-विधान

श्री इन्द्राणी-पूजन-यन्त्र

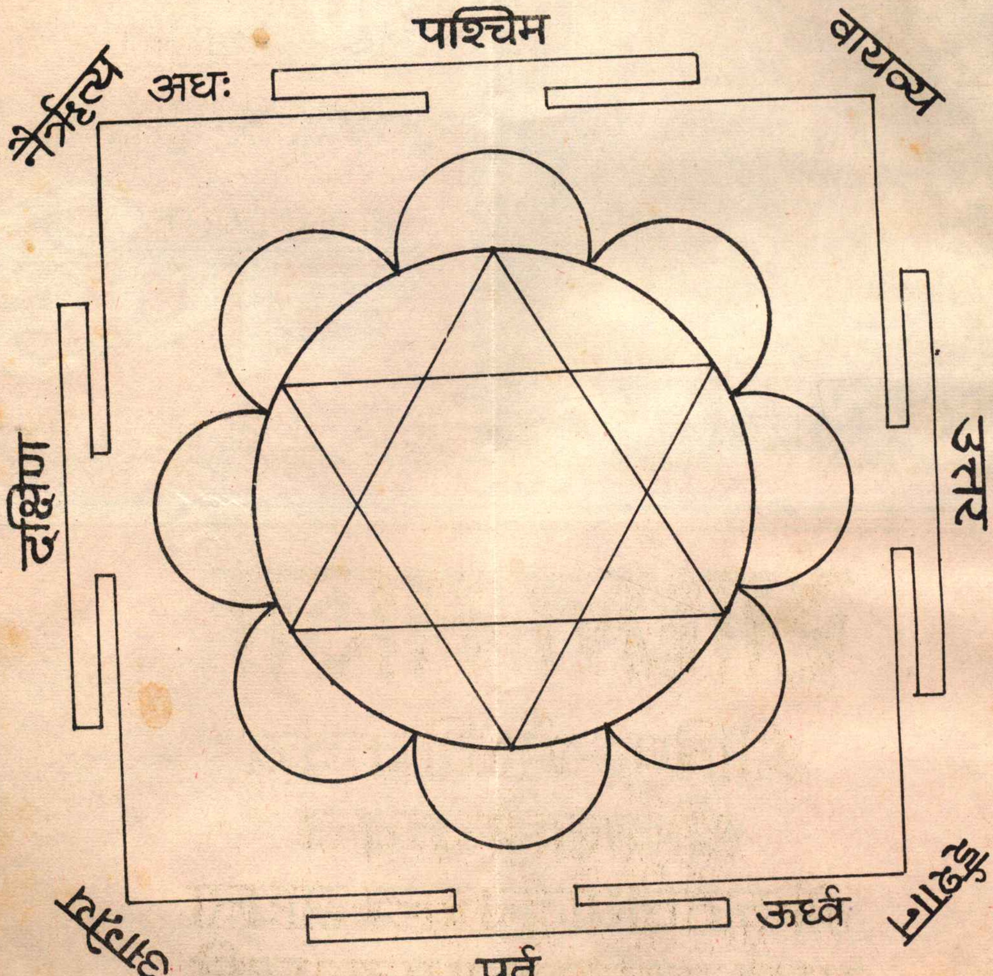

मानद सम्पादक
श्री रमादत्त शुक्ल

सम्पादक
श्री ऋतशील शर्मा

पता
चण्डी कार्यालय,
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग—२११००६
(उ० प्र०)

दूर-भाष
६०६७८३

शुल्क भारत में
एक प्रति : रु० ५

वार्षिक शुल्क : रु० ५५
आजीवन शुल्क : रु० ५५०

शुल्क विदेश में
हवाई डाक/समुद्री डाक

वार्षिक : रु० ५००/३००
आजीवन : ५०००/३०००

शुल्क मनीआर्डर या ड्राफ्ट कौल-कल्पतरु चण्डी के नाम से चण्डी कार्यालय, इलाहाबाद के पते पर भेजें।

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग,
प्रयाग—२११००६

हिन्दू - धर्म के ज्ञान - मय क्रिया-पक्ष
की
'राष्ट्र-भाषा' में शोध-पूर्ण प्रस्तुति

कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ५१ — अङ्क ७

'पार्थिव' सम्वत्, आश्विन, २०४९ वि० — अक्टूबर, १९९२

'नव-रात्र'-अङ्क

इस अंक में

- साधना-सत्र सिद्ध-पीठ रज-रप्पा ... १९४
- माता दुर्गा की उपासना ... १९५
- परा-शक्ति ... १९७
- श्रीतारा-वन्दना ... २००
- श्रीचामुण्डा नन्दिकेश्वर मन्दिर ... २०१
- 'सप्तशती' के सम्बन्ध में ... २०३
- जय जगदम्बिके ! ... २०५
- 'राम-कहानी' ... २०६
- भगवती की उपासना ... २०८
- साधन-माला ... २०९

आवश्यक सूचना :

साधना-सत्र
सिद्ध-पीठ रज-रप्पा

सप्तमी, अष्टमी एवं अक्षय नवमी कार्तिक शुक्ल, २०४६ वि०
१, २, ३ नवम्बर, १६६२ ई०

विद्वान् लेखक बन्धुओं, मान्य सहायकों एवं पाठक बन्धुओं को यह जानकर अति प्रसन्नता होगी कि उपर्युक्त तिथियों पर श्रीजगदम्बा की प्रेरणा से **शाक्त-साधना-पीठ (प्रयाग), बिहार शाक्त - सम्मेलन (पटना)** एवं **कुमुद प्रीता ट्रस्ट (राँची)** के सहयोग से **साधना-सत्र (प्रथम)** का आयोजन हिन्दू-समाज के उद्बोधन हेतु होने जा रहा है।

साधना-सत्र (प्रथम) के पहले चरण में, 'धर्म'-प्रेमी हिन्दू-भाइयों को 'हिन्दू-धर्म' की कल्याण-कारी सरलतम साधनाओं को, स-विधि समझाने का प्रयत्न होगा। **साधना - सत्र (प्रथम)** का द्वितीय चरण सिद्ध-पीठ रज-रप्पा की अधिष्ठात्री देवी **माँ छिन्नमस्ता** के चरित, तत्त्व एवं सुगम साधना-क्रम के वर्णन और दश-महा-विद्याओं के महिमा-गान से युक्त होगा। **साधना-सत्र (प्रथम)** के इन दोनों चरणों से सम्बन्धित विवरण, **'चण्डी' वर्ष ५१ के नवम्बर ६२** अङ्क द्वारा साधक-समाज के समक्ष प्रस्तुत होगा।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कुमुद प्रीता ट्रस्ट (राँची) द्वारा **सिद्ध - पीठ रज - रप्पा** के निकट भव्य दश-महा-विद्या मन्दिर, सूर्य मन्दिर, भैरव मन्दिर, गणेश मन्दिर, राधा-कृष्ण मन्दिर, आदि-शक्ति-स्वरूपा श्रीदुर्गा मन्दिर एवं 'पञ्च-वटी' की स्थापना कई वर्षों पूर्व की जा चुकी है। यही नहीं, साधकों के निवास हेतु उत्तम व्यवस्था भी ट्रस्ट द्वारा उपलब्ध है। अतएव प्राकृतिक सुन्दरताओं से परिपूर्ण यह सिद्ध-पीठ, सभी प्रकार की आध्यात्मिक चर्चाओं के लिए अत्यन्त उपयोगी क्षेत्र है।

जो पाठक बन्धु **साधना - सत्र (प्रथम)—सिद्ध - पीठ रज - रप्पा** से लाभ उठाना चाहते हों, वे **शाक्त-साधना-पीठ (प्रयाग), बिहार-शाक्त-सम्मेलन (पटना), कुमुद प्रीता ट्रस्ट (राँची)** अथवा **श्रीमहा-मेधानन्दनाथ (भुवनेश्वर)** के पते पर १५ अक्टूबर, ६२ तक सम्पर्क स्थापित कर, पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते है।

जो विद्वान् बन्धु, **साधना-सत्र (प्रथम)** के पहले चरण या दूसरे चरण अथवा दोनों में अपना रचनात्मक योग-दान करना चाहते हों, वे अपने 'योग-दान' की लिखित रूप-रेखा **३० सितम्बर, १६६२** तक **शाक्त - साधना - पीठ, प्रयाग** के पते पर लिखकर भेजने की कृपा करेंगे। यहाँ यह सूचनीय है कि रचनात्मक योग - दान की रूप - रेखा बहुत बड़ी नहीं होनी चाहिए। अधिक-से-अधिक ३० मिनट में समझानेवाली होनी चाहिए।

जिन विद्वान् बन्धुओं की रूप-रेखा हमारे उद्देश्य के अनुरूप होगी, उसे हम सु-सम्पादित कर **साधना-सत्र (प्रथम)** की **स्मारिका** ('चण्डी' वर्ष ५१, नवम्बर ६२ अङ्क) में प्रकाशित करेंगे, साथ ही प्रस्तुत-कर्त्ता विद्वान् बन्धु को **साधना-सत्र** में उपस्थित समुदाय के समक्ष पढ़कर समझाने के लिए सादर आमन्त्रित किया जाएगा। विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें—

शाक्त-साधना-पीठ, 'चण्डी'-कार्यालय, प्रयाग—२११००६
श्री विपिनबिहारी शरण, कुमुद प्रीता ट्रस्ट, ३४३ बो० रोड नं० ४, अशोकनगर, राँची—८३४००२
श्रीमहामेधानन्दनाथ, डी-११७, म्यूजियम कालोनी, भुवनेश्वर—७५१०१४ (उड़ीसा)
श्री वीरेन्द्र गिरि, श्री विजय वत्स, ई-१७, पुरानी पानी टंकी के सामने, कङ्कड़बाग, पटना—८०००२०

माता दुर्गा की उपासना

* प० पू० स्वामी दिव्यानन्द

देवी की **उपासना** भगवान् शिव का **मातृ-रूप में पूजन है**। **शक्ति** ईश्वर या भगवान् का **तेजः-स्वरूप** है। शक्ति ईश्वर में अन्तर्वर्तिनी **है**। जिस प्रकार आप अग्नि को **दाहिका शक्ति** से अलग नहीं कर सकते, ठीक उसी प्रकार आप ईश्वर से उसकी **ईश्वरीय शक्ति** को अलग नहीं कर सकते। शक्ति-सम्पन्न अधिकारी को **'शाक्त'** कहते हैं। **'शक्ति'** और **'शाक्त'** एक हैं। वे अभिन्न हैं। दुर्गा या पार्वती या काली की पूजा भी भगवान् शिव की पूजा है। **महा - माया भगवती** जब दुर्गा - रूप से अवतरित होती हैं, तो वे सिंह पर आसीन होती हैं तथा उनकी दस भुजाओं में दस विभिन्न आयुध धारण किए हुए होते हैं।

विद्युत्-शक्ति, आकर्षण-शक्ति, बल, ताप (उष्णता), प्रकाश, पञ्च - तत्त्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश)—ये सब **शक्ति के ही अनादि प्रकाशन** या स्पष्ट स्वरूप हैं। बुद्धि, विवेक, आत्म-बल तथा इच्छा-शक्ति—उसके आन्तरिक या भीतरी प्रकाशन हैं। वह **शक्ति त्रिगुणात्मिका** है। इन्हीं तीन गुणों (सत, रज और तम) के द्वारा वह संसार-लीला को चलाए रखती है।

विद्या, शान्ति, काम, क्रोध, तृष्णा, ममत्व और अहङ्कार—ये सभी शक्ति के ही व्यापार हैं। उसके स्वरूप असंख्य हैं। **दुर्गा, काली, भगवती, भवानी, अम्बा, अम्बिका, जगदम्बा, कामेश्वरी, गङ्गा, उमा, चण्डी, चामुण्डी, ललिता, गौरी, कुण्डलिनी, तारा, राजेश्वरी, त्रिपुर - सुन्दरी, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री** आदि उसी के विभिन्न नाम और रूप हैं। वह **परा - शक्ति** है, जो मूलाधार चक्र में सर्पाकार होकर निद्रित रहती है।

शक्ति ही विश्व के जीवन-केन्द्र में स्थित है। वह जीवन की **मौलिक शक्ति** है। सुषुम्ना तथा अन्य नाड़ियों द्वारा वह शरीर में जीवन को प्रवाहित करती है। वह रस और रक्त के द्वारा शरीर का पोषण करती है। वह सूर्य में तेज या प्रकाश है। फूलों में सुगन्ध है, प्रकृति में सौन्दर्य है। वेदों में वह गायत्री है। इन्द्र-धनुष में वह नाना-वर्ण है। मन में बुद्धि है। मकरध्वज तथा स्वर्ण - भस्मादि धातुओं में शक्ति है। ऋषि-मुनियों में विचार या विवेक है। भक्तों में प्रेम या भक्ति है तथा योगियों में संयम और समाधि है।

अन्य की अपेक्षा आप अपनी माता के पास अधिक स्वतन्त्र रहते हैं। आप अपने पिता की अपेक्षा अपनी माता से अधिक प्रेम करते हैं। **'न मातुः परम-दैवतम्'** अर्थात् माता से बढ़कर कोई देव या ईश्वर नहीं है। माता ही आपका पालन-पोषण करती है। वही आपकी रक्षा करती है, आपको सान्त्वना देती है तथा आपको ढाढ़स बँधाती है।

माता आपकी **सर्व - प्रथम गुरु है**। प्रथम अक्षर, जो प्रत्येक मनुष्य उच्चारण करता है, वह माता का ही प्रिय नाम **'माँ' है**। माँ अपने बच्चे के लिए सर्वस्व अर्पण कर देती है। बच्चा पिता की अपेक्षा माता से अधिक परिचित रहता है क्योंकि माता अत्यन्त दयालु, अनुरागी और स्नेही होती है

तथा अपने बच्चे की देख - रेख किया करती है। जब कभी भी बच्चे को किसी वस्तु की आवश्यकता होती है, तो वह तुरन्त अपनी माता के पास जाकर हाथ पसारता है कि पिता के पास ? यदि बच्चा रोता है, तो उसके रोने की आवाज सुनते ही वह सारा गृह-कार्य छोड़ देती है और भागकर उसके पास जा उसकी सुध-बुध लेती है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में भी साधक या भक्त बालक का पिता **शिव** की अपेक्षा **माता दुर्गा** के साथ अधिक सम्बन्ध है। भगवान् शिव संसार के प्रति उदासी हैं। वे त्यागी और विरक्त हैं। अपने शरीर में भस्म और गले में रुण्ड-माल धारण करते हैं तथा भङ्ग और धतूरे के नशे में मग्न हुए श्मशान में निवास करते हैं। आत्मा का ध्यान करते हुए निर्विकल्प समाधि में स्थित रहते हैं। अपने प्रतिनिधित्व का सब अधिकार अपनी **सह-कारिणी शक्ति दुर्गा** को दे रक्खा है।

माँ दुर्गा ही संसार के कार्य-कलापों की देख-भाल किया करती हैं। भगवान् **शिव (पुरुष)** अपनी **शक्ति प्रकृति (दुर्गा)** की ओर जब टकटकी लगाकर दृष्टि - पात करते हैं, तो वह अपने आपको सृष्टि, सृजन और संहार-कार्य में व्यवसायित करती हैं।

अतः यह योग्य ही है कि साधक **सर्व-प्रथम माता देवी की ही आराधना करे,** जिससे वह ज्ञान की प्राप्ति **(आत्म-साक्षात्-कार)** के लिए प्रस्तुत हो सके। यही कारण है कि भक्तों ने **राधा-कृष्ण, सीता-राम, गौरी-शङ्कर, उमा-शङ्कर, भवानी-शङ्कर, लक्ष्मी-नारायण** आदि युगल नामों में पहिले **राधा, सीता, गौरी, उमा, भवानी** आदि को ही रक्खा है।

जगज्जननी भगवती देवी की उपासना **आत्म-ज्ञान को देनेवाली** है। 'कठोपनिषद्' में जो **'यक्ष-प्रश्न'** नामक कथा आती है, वह इस बात का प्रमाण है, जिसमें उमा ने इन्द्रादि देवों को तत्त्व-ज्ञान की शिक्षा दी थी।

उस मातृश्री की करुणा अपार है। उसकी दया असीम है। उसका ज्ञान अनन्त है। उसका महत्त्व अकथनीय है। वह भक्ति और मुक्ति की दाता है।

निष्कपटता, नम्रता तथा शुद्ध उदार हृदय से उसकी उपासना कीजिए। कपट, स्वार्थ तथा अहङ्कार का त्याग कीजिए। अपने आपको उसके प्रति सम्पूर्णतः प्रसन्नता - पूर्वक समर्पण कर दीजिए। उसका गुण-गान कीजिए। उसके नाम का जप कीजिए। श्रद्धा और प्रेम के साथ उसका पूजन कीजिए।

'नव-रात्रि' में देवी की पूजा का विशेष महत्त्व है। साधना के लिए यह समय परम उपयुक्त है। इन दिनों की पूजा का रहस्य अति गुप्त है। इन दिनों में देवी और दैत्य भण्डासुर के बीच में घोर युद्ध हुआ था। दसवीं रात्रि को युद्ध समाप्त हुआ और देवी की विजय हुई। यही **'विजया - दशमी'** है। यह विद्यारम्भ के लिए अति शुभ दिन है। आध्यात्मिक साधकों को दीक्षित करने के लिए भी यह दिन अत्यन्त श्रेष्ठ है। कुरु-क्षेत्र के मैदान में युद्धारम्भ के पूर्व अर्जुन ने भी इस दिन देवी का पूजन किया था।

भगवती दुर्गा विश्व-शान्ति-विरोधी शक्तियों का नाश कर संसार में धर्म की स्थापना करे। वह दुष्काल या दुर्भिक्ष तथा व्यापक रोगों का अपहरण करे। वह विश्व के अपने सभी पुत्रों को ऋद्धि-सिद्धि, शान्ति तथा आनन्द प्रदान करे। वह हमारी आसुरी वृत्तियों का संहरण कर हमें दैविक सम्पदा प्रदान करे। वह हमें ज्ञानामृत पिलाकर कैवल्य मोक्ष प्रदान करे।

परा-शक्ति

परम पूज्य जस्वा शिवानन्द

'परा-शक्ति' की पूजा दो प्रकार की कही गई है—१ **बहिः पूजा** और २ **मानसिक पूजा**। **'बहिः पूजा'** के भी दो भाग है—१ **वैदिक** और २ **तान्त्रिक**। 'वैदिक' पूजा, वेदानुगामियों के लिए है और 'तान्त्रिक' पूजा, तान्त्रिक साधकों के लिए। इस प्रकार सभी देवताओं की पूजा के भिन्न - भिन्न विधि-विधान हैं। बहुत से प्रकरणों में तो **'शक्ति-पूजा'** का विधि-विधान 'शिव-लिङ्ग-पूजा' जैसा ही है। आसन, स्तुति (प्रार्थना), अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, सुगन्धि, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, मुख-वासन, नमस्कार आदि। इनमें पूजन के आरम्भ और अन्त में देवता का आवाहन तथा विसर्जन, हृदय में किया जाता है।

'शक्ति-पूजा' के मन्त्रों में 'मातृका' - मन्त्र (ह्रीं) का उच्चारण किया जाना चाहिए। बिना 'मातृका' के मन्त्रों में कोई भी सत्ता नहीं है। 'मातृका-मन्त्र' तीन प्रकार का है—१ स्थूल, २ सूक्ष्म और ३ अति सूक्ष्म। यह साधक की आध्यात्मिक क्रमोन्नति पर निर्भर है। 'मातृका - मन्त्र' गुरु से ही सीखा जाना चाहिए। इसे शास्त्रों या पुस्तकों द्वारा कदापि नहीं सीखा जा सकता।

मानव शरीर में प्रत्येक मन्त्र के उच्चारणार्थ चार मुख्य स्थान हैं—१ **परा**, २ **पश्यन्ती**, ३ **मध्यमा** और ४ **वैखरी**। मौलिक शब्द-ध्वनि, जो **'मूलाधार'** में उठती है, वह **'परा'**-मात्रा है—वही सर्वोत्कृष्ट है। इस प्रकार की अपरिपक्व 'शब्द-ध्वनि' की आकृति, केवल उन उच्च कोटि के साधकों को दृष्टि-गोचर होती है, जो जीवन-मुक्त की स्थिति को पहुँच चुके हैं। **'पश्यन्ती'** वह अपरिपक्व 'मन्त्र-ध्वनि' है, जो **'मणिपुर-चक्र'** (नाभि-स्थान) में उठती है और जिसे केवल योगी-गण ही श्रवण करते हैं। वही ध्वनि, जब **'अनाहत-चक्र'** (हृदय-स्थान) में पहुँचकर प्रस्फुरित होती है, तो उसको **'मध्यमा'** कहते हैं। अन्त में जब वही 'मन्त्र-ध्वनि', 'ग्रीवा' से होती हुई कण्ठ और ओष्ठ के बाहर आती है, तो कर्ण-गोचर (सुनने योग्य) होती है। इसी को **'वैखरी'** कहते हैं। उस समय, 'मन्त्र - ध्वनि' स्थूल रूप धारण करती है और उसका उच्चारण करनेवाले के अतिरिक्त अन्य लोग भी उसे श्रवण कर सकते हैं।

'परा' और **'पश्यन्ती'** की स्थिति में, जब मन्त्र का उच्चारण किया जाता है, 'पूजा' सर्वोत्कृष्ट कहलाती है, **'मध्यमा'** में सूक्ष्म और **'वैखरी'** में स्थूल (अधम)।

जो साधक **'मानसिक पूजा'** करने के योग्य हैं, उन्हें चाहिए कि वे बहिः - पूजा करने में, अपने समय और शक्ति को नष्ट न करें।

देवी की **'मानसिक पूजा'** भी दो प्रकार की है—एक वह 'ध्यान', जिसमें 'मन' को शरीर के भीतरी अङ्गों पर निर्धारित कर किया जाता है और दूसरा इसके बिना। दूसरा ही श्रेष्ठ है। प्रथम प्रकार में, षट्-चक्रों के देवताओं का मातृका-मन्त्रों से ध्यान किया जाता है तथा दूसरे प्रकार में, साधक

अपने 'शुद्ध सम्वित्'—'चिदात्मा' में 'ध्यान' करता हुआ, अपने 'पर - देवता' के साथ एकत्व प्राप्त करता है। 'सम्वित्' का अर्थ है, **'परा-शक्ति'**। ऐसा कहा गया है—

'हे नैमिषारण्य के मुनि-गण ! आप सदा परा-शक्ति की पूजा करें।' (यहाँ 'पूजा' से अभिप्राय है—'परा-शक्ति' अथवा 'आत्म-शक्ति' के साथ तादात्म्य-सम्बन्ध)।

शुद्ध चैतन्य से परे जो कुछ भी हम देखते हैं, वह संसार है, जिसमें जीवात्मा बद्ध है। इसलिए संसार-जनित अज्ञान का नाश करने के हेतु, **'परा-शक्ति'** की उपासना करनी चाहिए। वही **'विश्व-साक्षी'** है। वह **चर-अचर पदार्थों की आत्मा** है। वह सब प्रकार के **नाम-रूपों से मुक्त** है तथा वह अन्य **संकुचित स्थितियों एवं गुणों से परे** है।

बुद्धिमान् साधक को चाहिए कि वह सर्व-प्रथम, चिदात्मा-रूपा **'परा-शक्ति'** की 'मातृका-मन्त्र' 'ह्रीं' के द्वारा उपासना करे। पूर्व - कथित स्वरूपों का त्याग कर, 'सम्वित्' से **'परा - शक्ति'** का ध्यान करता हुआ, उसके साथ तादात्म्य स्थापित करे। 'द्वैत'-भाव का नाश कर, **ध्याता और ध्येय की एकता** प्राप्त करे। यही मनुष्य जीवन का सर्वोत्तम लाभ है। वेदों में कथित इस प्रकार की पूजा - पद्धति से परमानन्द की प्राप्ति होती है।

भूत - शुद्धि—'परा - शक्ति' की पूजा हेतु **'भूत - शुद्धि'** एक आवश्यक तान्त्रिक क्रिया है। इसके द्वारा पञ्च-भूतों से बनी मानव देह की शुद्धि होती है। साधक अपने पाप - मय शरीर को भस्म कर देव-शरीर का निर्माण करता है। उसमें देवी की प्राण - शक्ति को प्रविष्ट करता है। साधक यह भावना करता है कि कुण्डलिनी जाग्रत् हो गई है और एक तत्त्व दूसरे में लीन होते हुए सभी तत्त्वों का ब्रह्म में लय हो गया है।

न्यास—'न्यास' भी **परा - शक्ति** की पूजा हेतु अत्यन्त आवश्यक तान्त्रिक क्रिया है। इसमें मन्त्रों का उच्चारण करते हुए अँगुलियों द्वारा शरीर के विभिन्न अङ्गों में उनका 'न्यास' (स्थापन) किया जाता है।

कवच—शरीर के विभिन्न अङ्गों के रक्षार्थ, एक ही ब्रह्म की नाना नामों से इसमें स्तुति की जाती है। यथा—**मस्तक में**—परब्रह्म परमात्मा मेरी रक्षा करें ! **हृदय में**—इष्ट-देवता मेरी रक्षा करें ! **कण्ठ में**—भगवान् विष्णु मेरी रक्षा करें ! **मुख, हस्त, पादादि सब अङ्गों में**—अन्य देवादि-गण मेरी रक्षा करें। **'कवच'** को भोज - पत्र पर लिखकर, सोने, चाँदी या ताँबे के मादलिए (एक प्रकार का गोलाकार आभूषण) में बन्द कर, गले में पहनते भी हैं अथवा दक्षिण भुजा पर बाँधते हैं। इससे पहननेवाले की रक्षा होती है तथा उसे सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

मुद्रा—'परा-शक्ति' की पूजा में मुद्राएँ भी आवश्यक क्रिया हैं। **मुद्रा**—हस्त-सम्बन्धी सङ्केतों की क्रिया-पद्धति है। **'मुद्रा'** से देवता प्रसन्न होते हैं। १०८ मुद्राएँ हैं। यथा, देवता का **आवाहन** करते हुए, एक विशिष्ट मुद्रा का प्रदर्शन किया जाता है। अर्घ्य प्रदान करते हुए, **'मत्स्य-मुद्रा'** दिखाई जाती है। बाएँ हाथ की पीठ पर दक्षिण हस्त रक्खा जाता है और फिर दोनों अंगुष्ठों को बाहर निकाल कर, मछली के पैरों की भाँति विस्तृत कर दिए जाते हैं। यह **'मत्स्य-मुद्रा'** है। इसी प्रकार पूजा - काल में अनेक प्रकार की मुद्राएँ की जाती हैं।

पञ्च-तत्त्व—शक्ति-पूजा में पञ्च-तत्त्वों की भी आवश्यकता होती है। पञ्च-तत्त्व ये हैं—१ मद्य, २ मांस, ३ मत्स्य, ४ मुद्रा (पका हुआ अन्न) और ५ मैथुन। ये सब **'म'** अक्षर से प्रारम्भ होते हैं,

इस कारण सामान्य भाषा में इन्हें पञ्च - मकारों के नाम से पुकारते हैं। पञ्च-तत्त्व, पीना, खाना और वृद्धि करना इन्हीं का तो प्रति-रूप है। ये पञ्च-तत्त्व 'महा-पातक-नाशनम्' (पापों को नाश करनेवाले) हैं। इनका अर्थ सदा शब्दानुसार नहीं होता। तामसिक (पशु), राजसिक (वीर) या सात्त्विक (दिव्य) साधकों के अनुसार, इनका अर्थ क्रमशः भिन्न-भिन्न होता है।

'मद्य' (मदिरा) मद्य हो अथवा नारियल का पानी अथवा आत्मोन्मादक ब्रह्म - ज्ञान। **मद्य,** 'आत्म-ज्ञान' को सूचित करनेवाला एक चिह्न है। 'ब्रह्म-रन्ध्र'—'सहस्र-दल-कमल' में शिव और शक्ति के मिलन का नाम **'मैथुन'** है। **'मांस'**—साधना का वह अङ्ग है, जिसके द्वारा साधक अपने सब कर्मों को ईश्वरार्पण करता है। **'मत्स्य'** वह सात्त्विक कार्य है, जिसके द्वारा साधक प्राणि-मात्र के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करता है। आसुरिक या पाप कर्म, जो अधःपतन या बन्धन का कारण है, उसका त्याग ही **'मुद्रा'** है। मदिरा—अग्नि, मांस—वायु, मत्स्य—जल, मुद्रा—पृथ्वी और मैथुन—आकाश है।

'मदिरा' के अभाव में, दूध, घृत, शहदादि अनुकल्प हैं। 'मांस' के अभाव में, नमक, अदरक, तिल, सफेद लोभिया, लहसुन आदि अनुकल्प हैं। 'मत्स्य' के अभाव में, श्वेत बैंगन, मूली, मसूर और लाल तिल अनुकल्प लिए जा सकते हैं। धान, चावल, गेहूँ, बाजरा आदि 'मुद्रा' हैं। एक विशिष्ट 'मुद्रा' के द्वारा पुष्प अर्पण करना 'मैथुन' है।

अपनी विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त, किसी अन्य स्त्री के साथ सम्भोग करना महा-पाप है। **वैदिक-धर्म** इस बात पर अधिक जोर देता है। वह केवल वास्तविक मैथुन का ही निषेध नहीं करता वरन् आठ प्रकार के मैथुनों का भी। जैसे, १ स्त्री का स्मरण, २ कीर्तन (स्त्री-सम्बन्धी बातचीत), ३ केलि (स्त्री के साथ खेलना), ४ प्रेक्षणम् (स्त्री को देखना), ५ गुह्य-भाषण (स्त्री के साथ एकान्त में बातचीत करना), ६ सङ्कल्प (स्त्री-सम्भोग की इच्छा), ७ अध्यवसाय (स्त्री-सम्भोग का निश्चित विचार) तथा ८ क्रिया-निष्पत्ति (यथार्थ रूप से मैथुन करना)।

तान्त्रिक अपनी स्त्री के सङ्ग मैथुन करता है। वह अपनी स्त्री को अपनी **'शक्ति'** मानता है। स्त्री गृह-लक्ष्मी कहलाती है। वह घर की देवता है, जिसका पुरुष के साथ संयोग, शास्त्रोक्त विधि के अनुसार विवाह-संस्कार द्वारा हुआ है। स्त्री को एक भोग्य पदार्थ नहीं समझना चाहिए। वह पुरुष की अर्धाङ्गिनी है। वह उसकी सङ्गिया है।

यन्त्र—परा-शक्ति की पूजा में मूर्ति के स्थान में **'यन्त्र'** की पूजा की जाती है। **'यन्त्र'** - पूजा द्वारा जीव के काम, क्रोध, लोभ आदि विकार दूर हो जाते हैं। 'यन्त्र', 'कागज' पर खींचा जाता है। वह 'धातु-पट' पर भी खोदा जाता है। विशिष्ट देवता का विशिष्ट यन्त्र होता है। पूजा के प्रयोजन के अनुसार 'यन्त्र' भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। सभी यन्त्रों में **'भू-पुर'** (किनारा) सामान्य होता है। 'भू-पुर' सीधी रेखाओं से बनी हुई एक चतुष्कोण आकृति है (जिसमें चार द्वार होते हैं), जो 'यन्त्र' को वाह्य-जगत् से परिवेष्टित तथा पृथक् करता है। संक्षेप में, 'यन्त्र' देवता का शरीर है।

साधक प्रथम देवता के शरीर का ध्यान करता है और फिर अपने शरीर में, देवता का आवाहन करता है। इस प्रकार जागृत हुई, उस दैविक शक्ति को, तब वह 'यन्त्र' में स्थापित करता है। जब देवता, 'यन्त्र' में विराजमान हो जाते हैं, तो फिर विशिष्ट मन्त्र द्वारा **'प्राण-प्रतिष्ठा'** की जाती है। इस प्रकार 'यन्त्र' में देवता की स्थापना की जाती है।

(शेष पृष्ठ २०० पर)

ॐ श्री तारायै नमः

श्रीतारा-वन्दना

* पं० बलराम दुबे, ७ नवलकिशोर मार्ग, लखनऊ

जटा पिङ्गला बद्ध-नागाधिराजा,
प्रभा स्वर्ण-बालार्क-बाला हिरण्या।
प्रतीची दिशा मेरु-वादी नदी में,
जगी प्रात-काले प्रभा सूर्य-कन्या ॥
दया-सागरा उग्र-तारा तरण्या ॥

नदी चोलना पावना कल्पना में,
कली प्रस्फुटी पद्म श्वेता सु-रम्या।
विराजें उसी पुष्प पे उग्र-तारा,
करे कर्त्तरी खड्ग वामे सु-धन्या ॥
दया-सागरा उग्र-तारा तरण्या ॥

लिए नव्य नीलोत्पली सव्य-हस्ते,
करे खप्परा भाव-गुह्या न गम्या।
गले मुण्ड-माला महा-अस्थि-माला,
तुही नाव निस्तार तारा तरण्या ॥
दया-सागरा उग्र-तारा तरण्या ॥

जटा पिङ्गला सूर्य की रश्मियों-सी,
हिरण्या सु-गर्भा क्षुधा-क्रान्त-जन्या।
महा-आतुरा रक्त-प्यासी विक्षुब्धा,
खड़ी उग्र-तारा महा-क्षुब्ध-शून्या ॥
दया-सागरा उग्र-तारा तरण्या ॥

जटा-जूट-जूटा महा-काल-कूटा,
सभी हस्त में सर्प नागाभि-रण्या।
महा-कष्ट-आपत्ति-नाशो भवानी,
दया-सागरा उग्र-तारा तरण्या ॥
प्रभा स्वर्ण-बालार्क-बाला हिरण्या ॥
दया-सागरा उग्र-तारा तरण्या ॥

उठी काल-कूटी महा-ज्वाल तूने,
शिवाक्षोभ्य को भाल-गङ्गा छिपाया।
मिटे कण्ठ की दग्ध ज्वाला असह्या,
बिठा अङ्क में दुग्ध तूने पिलाया ॥
मिटे नील-तारा अविद्यादि-माया ॥

उसी प्राण-पी को रखे पाँव नीचे,
खड़ी पैंतरे पाँव आगे बढ़ाया।
शवारूढ़ हो लाश में प्राण फूँका,
तभी शम्भु ने ज्ञान-चैतन्य पाया।
मिटे नील-तारा अविद्यादि-माया ॥

कला-कर्म हीना अकर्मण्य-दीना,
नहीं साधना-शक्ति सामर्थ्य पाया।
मिले ज्ञान-विद्या कला-काव्य-धारा,
मिटे नील-तारा अविद्यादि-माया ॥
दया-सागरा सिन्धु-संसार-तारा ॥

महा-क्षोभ को भाल में जो छिपाएँ,
वही सिन्धु तारें-तरें बे-सहारा।
हरें कष्ट आपत्ति, उत्पात-पीड़ा,
महा-घोर-रूपे सदा उग्र-तारा ॥
दया-सागरा सिन्धु-संसार-तारा ॥

महा-ज्ञान दो बुद्धि आनन्द-विद्या,
कला-काव्य-धारा मिले नील-तारा।
कृपा भक्ति दो, मुक्ति दो, मुक्ति-माता,
दया-सागरा सिन्धु-संसार-तारा ॥
दया-सागरा सिन्धु-संसार-तारा ॥

* * *

(पृष्ठ १९९ का शेष)

चक्र-पूजा—**'परा-शक्ति'** की पूजा में सम्मिलित होनेवाले साधक पुरुष और स्त्री - गण क्रमशः एक के पास दूसरा **'चक्र'** बनाकर बैठ जाते हैं। शक्ति (भैरवी), साधक (भैरव) के वाम - भाग में बैठती है। चक्र-स्वामी या चक्रेश्वर अपनी शक्ति के साथ **'चक्र'** के बीच में बैठता है। पान, चर्वण तथा पूजा, सभी एक साथ बैठकर करते हैं। वहाँ जाति-पाँति का भेद-भाव नहीं होता है। **वीर - चक्र, राज - चक्र, देव-चक्र** तथा **महा-चक्र** आदि भिन्न-भिन्न **'चक्र'** होते हैं। प्रत्येक **'चक्र'** साधकों की अनेकानेक कामनाओं को पूर्ण करनेवाला होता है।

चामुण्डा महा-माया की जय

श्री चामुण्डा नन्दिकेश्वर मन्दिर

माता चामुण्डा का मन्दिर भारतवर्ष के प्राचीन मन्दिरों में से एक है। हिमालय की गगन-चुम्बिनी चोटियों के मध्य में अपने अपूर्व प्राकृतिक सौन्दर्य और दिव्य शक्ति से परिपूर्ण यह देव - भूमि आगन्तुकों को आकर्षित करती है। केवल ऐतिहासिक महत्त्व में ही नहीं, अपितु इस पर्वतीय प्रदेश के शान्त विजन प्रान्त-स्थानों में भी यह स्थान प्रसिद्ध है। दिवाकर की हेम-किरणों तथा अपनी प्राचीनता और आन्तरिक शक्ति से बाह्यान्तर हेम-वर्णिम हो जाता है।

'देवी-भागवत' तथा **'ब्रह्माण्ड-पुराणान्तर्गत जालन्धर-माहात्म्य'** में भगवती चामुण्डा का निम्न प्रकार महिमा-गान मिलता है—

कृतं कार्यं सुराणां ते, ददाम्यद्य वरं शुभम्। चण्ड-मुण्डौ हतौ यस्मात्, तस्मात् ते नाम कालिके!
चामुण्डेति सु - विख्यातं, भविष्यति धरा-तले।

अम्बिका की भृकुटी से प्रादुर्भूत कालिका ने जब चण्ड-मुण्ड का वध किया, तब अम्बिका ने प्रसन्न होकर वर दिया कि 'तुमने चण्ड-मुण्ड का वध किया, इसलिए इस पृथ्वी पर **'चामुण्डा'** नाम से प्रसिद्ध होगी।' यह वही **'चामुण्डा देवी'** हिम की उपत्यका में वास कर भक्तों का अभीष्ट सिद्ध करती हैं।

'जालन्धर-माहात्म्य' में चामुण्डा-क्षेत्र का वर्णन विस्तृत रूप से प्राप्त है। आज से १०३ वर्ष पूर्व भारत के प्रसिद्ध विद्वान् एवं **'सप्तशती-सर्वस्व'** के रचयिता पं० सरयूप्रसाद द्विवेदी अपने गुरु स्वामी दुर्गानन्द जी के आदेश से ६ वर्ष की तपश्चर्या मात्र से इसी सिद्ध-क्षेत्र से सिद्धि प्राप्त कर विख्यात हुए। तदनन्तर इस पर्वतीय प्रदेश के प्रसिद्ध पं० आत्मप्रकाश जी अवस्थी इस भूमि में उग्र तप कर समाज का मनोरथ सफल करते रहे। इसी पुण्य भूमि में हरद्वार से आकर लोक-विख्यात स्वामी यज्ञपुरुष महाराज ने तप कर समाज के समक्ष असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया। श्री लट्ठ निरञ्जन अवधूत (मैथिल) ने यहाँ बहुत दिनों तक तपश्चर्या कर सिद्धि प्राप्त की। पञ्जाब के बच्चों से वृद्ध पर्यन्त में प्रसिद्ध 'बाबा घासीराम जी महाराज' ने यहीं सिद्धि प्राप्त की। इस प्रकार यहाँ अनादि - काल से सिद्ध पुरुष होते आए हैं।

दूर-दूर से लोग दुस्साध्य कामनाएँ लेकर यहाँ आते हैं, जो अल्प - काल में पूर्ण हो जाती हैं। 'शारदीय नव - रात्र' में यहाँ प्रति वर्ष मेला भरता है। यहाँ की प्रबन्धक - समिति 'सहस्र - चण्डी' और विद्वद्-पुरुषों के प्रवचन का आयोजन करती है।

आगन्तुकों के विश्राम के लिए तीन धर्म-शालाओं के अतिरिक्त एक सुन्दर विशाल सङ्कीर्तन-भवन भी है। जहाँ एक ओर पहाड़ी वधुओं का मधुर राग एवं पहाड़ी लोक-नृत्य लोगों का मन प्रसन्न कर देता है, वहीं दूसरी ओर जगदम्बा की चरण-चुम्बिनी **'बाण-गङ्गा'** की कल-कल ध्वनि सभी के मन को एकाग्र कर देती है।

'शारदा-पीठ' में यदि प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ मानवीय गौराङ्ग सौन्दर्य है, तो **'जालन्धर-पीठ'** में आकर्षण और आतिथ्य-सत्कार की प्राकृतिक देन है ।

'शारदा-पीठ' में रस-रूप में देवता वास करते हैं, तो **'जालन्धर-पीठ'** में तेज तथा राग-रूप में देव-गण अपने भक्तों को मस्त बनाए रखते हैं । यही है काम-दुघा पहाड़ की रानी **'चामुण्डा महा-माया'**, जहाँ हर प्रकार की वनौषधि सहज प्राप्य है ।

'चण्डी' **के मान्य सदस्य श्री विपिन महाजन, सपरिवार श्रीचामुण्डा मन्दिर में**

उत्तरी रेलवे के पठानकोट-योगेन्द्रनगर मार्ग में नगरोटा नामक स्टेशन से छः मील पक्की सड़क से पैदल आना पड़ता है । मोटर से आने का मार्ग है—'पठानकोट कुल्लू रोड' । बस - सेवा के द्वारा माँ वज्रेश्वरी (कांगड़ा) का दर्शन करते हुए नगरोटा आते हैं । वहाँ से पूर्वोक्त मार्ग द्वारा यहाँ आते हैं । यह स्थान हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा जिले में काँगड़ा से १६ मील पूर्व-दिशा में **'वाण-गङ्गा'** के तट पर बसा है—जहाँ **'जालन्धर-पीठ'** के द्वार-पाल **'नन्दिकेश्वर भगवान्'** गुफा में वास कर भक्तों के अभीष्ट पूर्ण करते रहते हैं । यहाँ के दिव्य **'नारे' हैं—साँचे दरबार की जय । चामुण्डा महा - माया की जय । नन्दिकेश्वर महा-देव की जय ।**

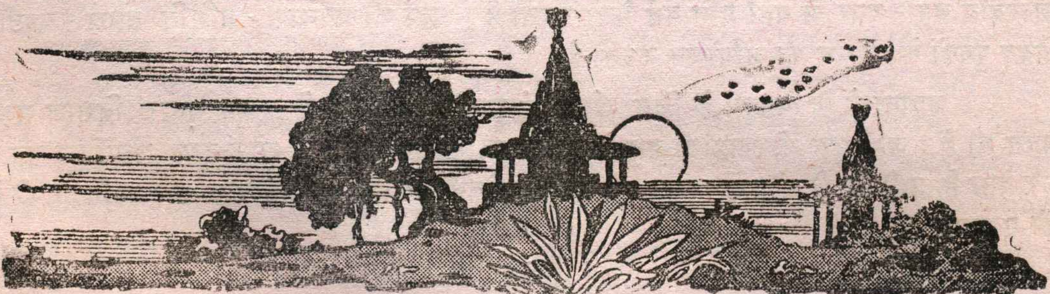

सप्तशती के सम्बन्ध में

—'कौल-कल्पतरु' पं० **देवीदत्त शुक्ल**

[**'कौल - कल्पतरु'** पण्डित देवीदत्त शुक्ल का यह मौलिक लेख **'चण्डी'** के वर्ष ८—सं. २००६ वि.—के अन्तिम अङ्क में प्रकाशित हुआ था। इस लेख में उठाया गया प्रश्न आज भी समुचित समाधान की अपेक्षा रखता है।—सं.]

'दुर्गा-सप्तशती' के प्रति मेरी भक्ति लड़कपन से ही रही है। उसका अर्थ न जानते हुए भी मैं उसका पाठ बड़े मनोयोग से किया करता था और यद्यपि उसके योग्य मैं कभी नहीं हो सका, परन्तु पाठ के प्रति अनुराग ज्यों-का-त्यों बना रहा। इधर कुछ दिनों से यह जानने का कुतूहल हुआ कि **'दुर्गा-सप्तशती'** का पाठ किस देवी को लक्ष्य में रखकर किया जाय? इस सम्बन्ध में **'चण्डी'** में दो - एक लेख भी छपवाए और उनके द्वारा शाक्त - धर्माचार्यों तथा विद्वानों से प्रार्थना की कि मेरे विनम्र निवेदन को पढ़ कर मेरा समाधान करने की कृपा करें, परन्तु दुःख की बात है कि किसी सज्जन का ध्यान उस ओर नहीं गया। सम्भव है कि उन्होंने मेरी जिज्ञासा को असङ्गत या अनावश्यक समझा हो, परन्तु मैं तो ऐसा समझ नहीं सकता था।

मैंने जहाँ **'चण्डी'** में लेख लिखे थे, वहाँ विज्ञ - जनों से भी अपनी जिज्ञासा प्रकट की। कई सज्जनों ने कई तरह से मेरा समाधान करने का प्रयत्न किया। उन सज्जनों में से एक परिव्राजक संन्यासी ने मेरा जो समाधान किया, उसको मैं यहाँ वार्त्तालाप के रूप में उपस्थित करता हूँ। यह वार्त्ता मैंने अपनी स्मरण-शक्ति से लिखी है।

दस बजे का समय था। एकाएक एक दण्डी स्वामी ने दर्शन देने की कृपा की। मैंने उनका आदर के साथ स्वागत किया और उनका अभिनन्दन करके उन्हें उनके अनुरूप आसन पर बिठाया। मैं भी उन्हीं के सामने अपनी जगह पर बैठ गया। जब स्वामी जी पधारे थे, तब मैं **'सप्तशती'** की एक टीका पढ़ रहा था। बैठते ही स्वामी जी ने मुझसे पूछा—वह पुस्तक कौन है?

मैंने कहा—महा-मुनि मार्कण्डेय द्वारा विरचित **'दुर्गा-सप्तशती'**।

स्वामी जी—[जरा मुस्कराकर] तो आप 'सप्तशती' को भी इसी तरह पढ़ते हैं!

मैं—कुछ चकित-सा होकर] मैंने आपका मतलब समझा नहीं।

स्वामीजी—[गम्भीर होकर] 'सप्तशती' तो हिन्दुओं के लिए बहुत ही पवित्र पुस्तक है। इसको बहुत ही शुचि स्थान में बड़े ध्यान से पढ़ना चाहिए।

मैं—सो तो महाराज, मैं यथा - शक्ति बराबर करता हूँ। कुछ मेरे मन में आशङ्काएँ हुई हैं। इससे 'सप्तशती' की भिन्न-भिन्न टीकाएँ पढ़ा करता हूँ।

स्वामीजी—[हँसकर] शङ्काएँ! 'सप्तशती' के सम्बन्ध में?

मैं—[कुछ झेंपकर] 'सप्तशती' के सम्बन्ध में नहीं, किन्तु 'सप्तशती' की कुछ बातों पर।

स्वामीजी—यह तो शङ्का का युग है, विश्वास का नहीं। आपकी क्या शङ्का है?

मैंने कहा—पहली तो यही कि वह कौन देवी हैं, जिनका माहात्म्य मेधा ऋषि ने सुरथ और समाधि को सुनाया ?

स्वामीजी ने कहा—तो आप अच्छी उधेड़-बुन में पड़े हुए हैं ! कोई देवी हो, आनन्द से पाठ करिए और उसका फल लीजिए ।

मैंने कहा—सो तो आप ठीक कहते हैं । मैं पाठ करता भी हूँ, परन्तु इन शङ्काओं का भी समाधान हो जाय, तो अच्छा ही होगा ।

स्वामीजी—शङ्का-वङ्का तो बेकार की वस्तु है और इस प्रकार के ऊहा-पोह करना समय गँवाना है । यह तो खुली ही बात है कि मेधा ने महा-माया का चरित-कथन किया है और इस स्तोत्र के वक्ता मार्कण्डेय महाराज ने उन देवी का नाम भी बता दिया है । उन्होंने उन्हें **'चण्डिका'** कहा है ।

मैंने कहा—यह तो मैं जानता हूँ और दूसरे भी ऐसा कहते हैं, परन्तु उन **'चण्डिका'** का रूप क्या है और उनका मन्त्र क्या है, यह कोई नहीं बता रहा है ।

स्वामीजी—वह तो ब्रह्म-मयी है । अधिकारी व्यक्ति उसका मन्त्र जानते होंगे । मेरा तो यह विषय नहीं है । मैं तो यही जानता हूँ कि मूल प्रकृति महा-माया की महिमा का वर्णन इसमें किया गया है और वह वस्तु बुद्धि के परे है ।

मैंने कहा—तो महाराज, 'सप्तशती' में महा-काली, महा-लक्ष्मी और महा-सरस्वती के जो चरित वर्णित हैं, उनका आप मूल प्रकृति से कैसे सम्बन्ध जोड़ेंगे ?

स्वामीजी—यह तो स्पष्ट बात है । विष्णु भगवान् योग-निद्रा में सो रहे थे । उनकी नाभि से एक कमल निकला, जिस पर ब्रह्मा जी का प्रादुर्भाव हुआ । इसी बीच में विष्णु के दोनों कानों के मल से मधु और कैटभ नाम के दानवों का उद्भव हुआ, जो ब्रह्मा को खा जाने को उद्यत हुए । ब्रह्मा जी ने भय-भीत होकर मूल प्रकृति महा-माया की प्रार्थना की क्योंकि यह प्रारम्भिकी लीला उन्हीं की थी । फलतः महा-माया ने उनकी रक्षा करने के उद्देश्य से विष्णु को जगा दिया । यह कौन शक्ति थी ? वही महा-माया मूल प्रकृति, जिसकी 'महा-काली' के रूप में हम लोग सप्तशती-द्वारा आराधना करते हैं ।

मैंने कहा—तन्त्र के सृष्टि-क्रम में तो 'महा-काली' भगवान् शङ्कर की शक्ति कही गई हैं । यहाँ उनकी उपस्थिति कैसे है ?

स्वामीजी—शङ्कर की शक्ति 'महा-काली' का यही रूप बना था और इसी रूप से 'महा-लक्ष्मी' और 'महा-सरस्वती' की भी उत्पत्ति हुई थी ।

मैंने कहा—तो आपका मत यह है कि मूल प्रकृति का भी एक रूप है, जिससे 'महा-सरस्वती', 'महा-लक्ष्मी' और 'महा-काली' सम्भूत हुई हैं ?

स्वामीजी—हाँ, आपने ठीक समझा है ।

मैंने कहा—परन्तु 'सप्तशती' में 'महा-काली', 'महा-लक्ष्मी' और 'महा-सरस्वती' के जो रूप निर्दिष्ट किए गए हैं, वे ब्रह्मा-विष्णु और महेश की उपर्युक्त नाम की शक्तियों के नाम और रूपों से मेल नहीं खाते ।

स्वामीजी—यह भी आपने ठीक समझा है। 'सप्तशती' के ये रूप उन रूपों से भिन्न हैं। 'सप्तशती' की इन देवियों की उत्पत्ति का वर्णन 'सप्तशती' में ठीक ही लिखा है। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शक्तियों की उत्पत्ति के वर्णन से सर्वथा भिन्न है।

मूल प्रकृति के 'महा-काली' रूप ने ब्रह्मा की रक्षा की है। देवताओं के तेज से सम्भूत तेजों से जो महा-शक्ति उत्पन्न हुई थी, उसका नाम 'महा-लक्ष्मी' रखा गया था क्योंकि सबसे पहले विष्णु भगवान् की ही शक्ति सम्भूत हुई है। इसी प्रकार शुम्भ और निशुम्भ के दमन के लिए ब्रह्मा जी ही देवताओं के अगुवा बनकर हिमालय पर प्रार्थना करने गए थे। फलतः जिस महा-शक्ति ने शुम्भ और निशुम्भ का संहार किया, उसको 'महा-सरस्वती' के नाम से अभिहत किया जाना सर्वथा उचित ही है।

वास्तव में मूल प्रकृति महा-माया जगज्जननी ने देवताओं का त्रास दूर करने के लिए समय-समय पर जो प्रचण्ड भाव धारण किया, उसी के 'सप्तशती'-वर्णित ये तीनों रूप हैं। महर्षि मार्कण्डेय जी ने इसी से उस प्रचण्ड भाव के रूप का, जो नामकरण **'चण्डिका'** किया है, वह सर्वथा सार्थक है। मेधा ऋषि ने भी इसी रूप का उपदेश सुरथ और समाधि को किया था।

जय जगदम्बिके !

—श्रीमती रुक्मिणी खन्ना, मुरादाबाद (उ० प्र०)

हो रही सुशोभित लिए खड्ग-गदा-चक्र-चाप, परिधान शूल भुशुण्डि और शङ्ख भी सुघोष हैं।
नील घनश्याम रङ्ग नेत्र हैं विशाल तीन, अङ्ग-अङ्ग साज रहे छवि के सु-कोष हैं॥

भक्त-जन ध्यावें जिनके कोमल चरण दस, पावें सुत बित ज्ञान मोक्ष सौं सु-पोष हैं।
ऐसी महा-काली गल मुण्ड-माल धारि, करें रक्षा हमारी यही भक्त को सु-तोष हैं॥

जोड़े खड़े हैं कर त्रि-देव भी समक्ष जिनके, गा-गा विरद वेद पार नहीं पाते हैं।
हो रहे नत चरणों में ऋषि-मुनि-सिद्ध, यह गन्धर्व गान गा-गा रिझाते हैं॥

बैठा बाम बबर सिंह मुँह को फुलाए हुए, जिसकी चिङ्घार ही सों दैत्य भाग जाते हैं।
विकट रव करते भैरव चलते सदा ही आगे, उसी परा अम्बा को भक्त भी मनाते हैं॥

महिषासुर मारिनी विदारनी निशुम्भ शुम्भ, चण्ड-मुण्ड-घातिनी बनी हो देवि चण्डिके !
रक्त-बीज का तो बीज नाश ही किया, हुम मात्र से ही धूम्र-लोचन प्रान भञ्जिके॥

काँपती जो थीं दिशाएँ स्थिर हुई हों शान्त, ऋषि मुनि देव गुण गान करें अम्बिके !
असामयिक अग्नि और उल्का-पात शान्त हुए, भक्त हो प्रसन्न कहें जय जगदम्बिके॥

'राम-कहानी'

—पण्डित ज्वालाप्रसाद तिवारी, प्रयाग

गर्मी की ऋतु थी। दिन भर काम करके थका हुआ घर पहुँचा। थोड़ी देर आराम करने के बाद गङ्गा-स्नान की इच्छा हुई। लगभग ८-९ बजे रात को गङ्गा-स्नान करने गया। मन भर नहाया, घर लौट आया, भोजन किया। कुछ इधर-उधर पढ़ा। निद्रा-देवी एकाएक आ गईं। सोते-सोते एक अद्भुत स्वप्न देखा। स्वप्न यह था—

मैं कहीं जा रहा हूँ। चलते-चलते एक नदी दिखाई पड़ी। नदी की ओर चला। नदी के किनारे पहुँचकर देखता हूँ कि नदी के किनारे एक घना वन है। उस वन में भाँति-भाँति के फूल फूल रहे हैं। नदी पर पक्का घाट बना हुआ है। सन्ध्या-काल का समय है। सूर्य महा-राज अभी थोड़े समय में अस्त होनेवाले हैं। फिर क्या देखता हूँ कि एक छोटा-सा मन्दिर भी बना हुआ है। मन्दिर के पास जाने से मालूम हुआ कि उसमें देवी जी की मूर्ति है। मूर्ति बड़ी सुन्दर है। मूर्ति की सुन्दरता, नदी का स्वच्छ जल, वन के फूलों की महक इत्यादि देखकर इच्छा हुई कि स्नान कर वन में फूले हुए फूलों की माला बनाकर देवी जी की पूजा करूँ।

फिर क्या था। बड़ी उत्सुकता से पुष्प चुने। माला बनाई। फिर स्नान किया। स्नान करने के पश्चात् माला को हाथ में लिए हुए मन्दिर की ओर चला। बड़े चाव के साथ माता जी के गले में माला पहनाने के लिए आगे बढ़ा। पास पहुँचकर माला माता के गले में पहनाने को ज्यों ही दोनों हाथ उठे, देखता क्या हूँ कि मूर्ति के नेत्रों से अश्रु-धारा बह रही है। माता जी के मुख पर लाली है। नेत्रों में भी लालिमा थी। रूप भयङ्कर हो उठा था। यह देखकर मैं डर से काँपने लगा। हाथ से माला पृथ्वी पर गिर पड़ी। पूजन और भक्ति सब भूलकर पीछे की ओर घूमकर झट से मन्दिर के बाहर आया। किसी ओर भागने ही वाला था कि इतने में क्या सुनता हूँ कि [मन्दिर के अन्दर से मानो किसी ने जोर से कहा] 'भागता क्यों है? ठहर और मेरे रोने का कारण सुन।'

काँपता हुआ मैं पत्थर की भाँति उसी स्थान पर खड़ा रह गया। फिर कुछ सोचकर आगे कदम उठाना चाहा। इतने में फिर सुनाई पड़ा—'डरो मत! तुझे किसी तरह की हानि न पहुँचेगी।'

धीरे से काँपते हुए शब्दों में मैं बोला—माता जी, मुझे बहुत भय लग रहा है।

उत्तर मिला—मत डरो। जिसके कारण तू डर गया है, उसका कारण तो सुन ले।

ऐसे शब्द सुनकर कुछ साहस हुआ। देवी जी की ओर मुँह करके मन्दिर के बाहर द्वार पर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला—माता जी, मैं बहुत भय-भीत हो गया हूँ। मैंने ऐसा दृश्य न कभी देखा था और न सुना ही।

आवाज हुई—ठीक कहता है। मैं तुझे कुछ हानि पहुँचाना नहीं चाहती, किन्तु तुझे कुछ बतलाना चाहती हूँ। यदि तू मेरा सच्चा भक्त है, तो ध्यान-पूर्वक निडर होकर सुन कि मैं क्यों रोई। मेरा एक भक्त था। वह मेरा बड़ा पूजन करता था। अपना सारा समय मेरे भजन-सेवा में व्यतीत करता था।

एक दिन उसने सोचा कि वह मन्दिर बनवाकर मेरी मूर्ति की स्थापना करे और फिर उसका भले प्रकार पूजन करे। अन्त में उसने इसी मन्दिर को बनवाया। मेरी मूर्ति की स्थापना की और इसी नदी में प्रति-दिन स्नान करता और दिन भर पूजन करता था। कुछ समय के बाद उसका शरीरान्त हो गया। उस दिन से आज तक यहाँ मैं अकेली रहती हूँ। स्नान कराना दूर रहा, कभी-कभी कुत्ते आकर इस मेरी मूर्ति पर पेशाब तक कर जाते हैं। तू जानता है कि मेरा मुख्य स्थान रहने का भक्तों का हृदय है। मैं सब कहीं व्याप्त हूँ। मुझे किसी भाँति का कष्ट नहीं, न यह इच्छा ही है कि मुझे स्नान कराया जाय या खिलाया जाय। यह तो भक्तों की अपनी प्रेम की इच्छा को पूरा करने का ढङ्ग है। मुझे रोना आया इसलिए कि उस भक्त ने भी बुद्धि से काम न लिया !

देख, परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि दी, इसलिए कि वह अपने सब कामों की छान - बीन उसके द्वारा कर ले। पशु इत्यादि जो काम करते हैं, उनमें बुद्धि की आवश्यकता नहीं। उनके सब काम स्वाभाविक होते हैं। जैसे किसी गाय व भैंस के बच्चे को तैरना सिखाया नहीं जाता, परन्तु उसको यदि नदी में फेंक दिया जाय, तो वह फौरन उसी तरह तैरने लगता है, जैसे मानो उसको बाकायदा सिखाया गया हो, परन्तु यह बात मनुष्य में नहीं है। जिस मनुष्य ने तैरना नहीं सीखा, वह उम्र भर भी तैर न सकेगा।

इससे ज्ञात हुआ कि भगवान् ने मनुष्य को बुद्धि-रूपी ऐसी शक्ति प्रदान की है कि वह जिस बात को चाहे कर सकता है। सोच सकता है कि कौन काम उचित है और कौन अनुचित। मान ले, किसी मनुष्य का पिता अब जीवित नहीं, परन्तु उसकी तस्वीर उसके पास है। उस तस्वीर को वह सँभाल कर अच्छे स्थान में रखता होगा, माला पहनाता होगा, दर्शन रोज करता होगा। यह सब उसका प्रेम है। यदि कोई उसके सामने उस तस्वीर का किसी भाँति अपमान करे, तो वह उसको सहन कैसे करेगा ? या यों समझ ले कि किसी ने उस तस्वीर को बाहर गली में फेंक दिया। गली में चलनेवाले लोगों के पैरों के नीचे वह कुचल रही है, तो उसको या उसके मित्रों को अथवा उसके पिता के मित्रों को भी तस्वीर का वह अपमान कैसे अच्छा लगेगा ? या मान लो, उसका पिता आता है। अपनी तस्वीर को इस तरह सड़क पर पड़ी हुई देखे, तो वह कहेगा कि उसका ऐसा अपमान क्यों किया जा रहा है ?

अब सोचने की बात यह है कि उसका पिता तो उस तस्वीर में है नहीं। तब भी उसको, उसके मित्रों को तथा उसके पिता को अच्छा न लगा। इसी भाँति इस मूर्ति में मेरा सच्चा स्वरूप भी नहीं, न मुझसे इस मन्दिर से सम्बन्ध है। मेरे रहने का निवास भी ऐसे स्थान पर है कि वहाँ बड़े-बड़े ऋषि और मुनि भी पहुँच नहीं सकते। मुझे दुःख है इस बात का कि मनुष्य के पास बुद्धि होते हुए भी वह भक्त यह न सोच सका कि जिसे वह परमात्मा समझता रहा, उसकी मूर्ति का, उसके मरने के पश्चात् क्या हाल होगा ? ऐसे घने जङ्गल में कौन पूजन करने आएगा ?

अच्छा होता कि पहले तो वह कोई मन्दिर ही न बनवाता, अपने हृदय में रखकर ही मेरा ध्यान-पूजन करता। यदि ऐसा करने में असमर्थ था, तो दूसरे मन्दिर बने हुए हैं, जहाँ मेरी मूर्तियाँ हैं, वहाँ पूजन और ध्यान कर सकता था। यदि उसकी इच्छा मन्दिर बनवाने से ही पूर्ण होती थी, तो ऐसी जगह बनवाता, जहाँ उसके न रहने के बाद मूर्ति की पूजा और ध्यान अन्य भक्त करते रहते, परन्तु उसने बुद्धि का कोई प्रयोग न किया।

मुझे ऐसे भक्तों का ध्यान आते ही उनकी मूर्खता पर दुःख होता है। आज तुझे माला लिए हुए जब मन्दिर में घुसते देखा, तो मेरे दिल में आया कि यह भी कोई भक्त है। इस मन्दिर को देखकर कहीं यह भी कोई मन्दिर बनवाने की न ठान ले और ऐसे ही या इससे भी बुरे स्थान पर मन्दिर बनवा डाले, जहाँ यहाँ से भी अधिक मेरी मूर्ति का अपमान हो। मुझे ऐसे भक्तों पर रोने के सिवा कुछ न सूझा। अतएव मुझे अब तुझसे यही कहना है कि मैं तुझसे अधिक प्रसन्न होऊँगी, यदि तू इन बातों पर सोच-विचार कर और अन्य भक्तों को यह मेरी 'राम-कहानी' सुना दे। आशा है कि मेरी 'राम-कहानी' सुनकर भक्त लोग अपनी-अपनी बुद्धि का प्रयोग करेंगे।

इतना सुनने के पश्चात् मुझे घण्टे का शब्द सुनाई पड़ा। मेरी आँख खुल गई।

भगवती की उपासना

— श्रीस्वामी जयदेव मिश्र

अनादि-काल से परमात्मा परमेश्वर ने संसार में प्रकृति व पुरुष दोनों का ही निर्माण किया है। प्रायः सभी विद्वानों का यह निश्चित मत है कि प्रकृति के बिना पुरुष अकेला कुछ भी नहीं कर सकता। कहा जाता है कि आदि शङ्कराचार्य जी महाराज प्रारम्भ में 'ब्रह्म' को ही सब कुछ मानते थे, 'शक्ति' का सम्मान नहीं करते थे, किन्तु कुछ दिनों के बाद उनको भी लाचार होकर 'शक्ति की प्रधानता' स्वीकार करनी ही पड़ी। आज दिन भी संसार में यही देखा जाता है, कि माँ के बिना जीवन वृथा हो जाता है। कहा भी है—'मैया बिन ओदर कौन भरै ?

शास्त्रों में भी 'माता' का पद सबसे अधिक श्रेष्ठ माना गया है। अतः यदि हम लोग अपना कल्याण चाहें, तो हमें नितान्त रूप से माँ की ही शरण में जाना चाहिए। आज की वर्तमान परिस्थिति में जब मनुष्य मात्र ही नहीं बलिक समस्त जीव मात्र, अनेक प्रकार के विभिन्न कष्टों से त्रसित हैं, तो हमारा वास्तविक उद्धार कौन कर सकता है ? अपने यहाँ कहा है—'कलौ चण्डी - विनायकौ।' हम सभी लोगों को, जो अपना सर्वथा कल्याण चाहते हैं, श्रद्धा व भक्ति से जगत्-जननी भगवती की उपासना करना ही सर्व-प्रकार से हितकर होगा। यह सहज में, साथ-ही निश्चय भुक्ति व मुक्ति को देनेवाली है।

साधनमाला

[भाद्रपद-अङ्क, (सितम्बर, ९२) से आगे]

(७०)

श्री त्रिपुर-भैरवी कवचम्

॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥

देव - देव महा - देव, सर्व-शास्त्र-विशारद ! कृपां कुरु जगन्नाथ ! धर्मज्ञोऽसि महा-मते ! ।
भैरवी या पुरा प्रोक्ता, विद्या त्रिपुर-पूर्विका । तस्यास्तु कवचं दिव्यं, मह्यं कथय तत्त्वतः ।
तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा, जगाद जगदीश्वरः । अद्भुतं कवचं देव्या, भैरव्या दिव्य-रूपि वै ।

॥ ईश्वर उवाच ॥

कथयामि महा-विद्या-कवचं सर्व-दुर्लभम् । शृणुष्व त्वं च विधिना, श्रुत्वा गोप्यं तवापि तत् ।
यस्याः प्रसादात् सकलं, बिभर्मि भुवन-त्रयम् । यस्याः सर्वं समुत्पन्नं, यस्यामद्यादि तिष्ठति ।
माता-पिता जगद्-धन्या, जगद्-ब्रह्मस्वरूपिणी । सिद्धिदात्री च सिद्धास्या, ह्यसिद्धा दुष्टजन्तुषु ।
सर्व-भूत-प्रियङ्करी, सर्व-भूत-स्वरूपिणी । ककारी पातु मां देवी, कामिनी काम-दायिनी ।
एकारी पातु मां देवी, मूलाधार-स्वरूपिणी । ईकारी पातु मां देवी, भूरि-सर्व-सुख-प्रदा ।
लकारी पातु मां देवी, इन्द्राणी-वर-वल्लभा । ह्रीं-कारी पातु मां देवी, सर्वदा शम्भु-सुन्दरी ।
एतैर्वर्णैर्महा-माया, शाम्भवी पातु मस्तकम् । ककारे पातु मां देवी, शर्वाणी हर-गेहिनी ।
मकारे पातु मां देवी, सर्व-पाप-प्रणाशिनी । ककारे पातु मां देवी, काम-रूप-धरा सदा ।
ककारे पातु मां देवी, शम्बरारि-प्रिया सदा । पकारे पातु मां देवी, धरा-धरणि-रूप-धृक् ।
ह्रीं-कारी पातु मां देवी, अकारार्द्ध-शरीरिणी । एतैर्वर्णैर्महा-माया, काम-राहु-प्रियाऽवतु ।
मकारः पातु मां देवि ! सावित्री सर्व-दायिनी । ककारः पातु सर्वत्र, कलाम्बर-स्वरूपिणी ।
लकारः पातु मां देवी, लक्ष्मीः सर्व-सुलक्षणा । ह्रीं पातु मां तु सर्वत्र, देवी त्रि-भुवनेश्वरी ।
एतैर्वर्णैर्महा-माया, पातु शक्ति-स्वरूपिणी । वाग्-भवं मस्तकं पातु, वदनं काम-राजिका ।
शक्ति-स्वरूपिणी पातु, हृदयं यन्त्र - सिद्धिदा । सुन्दरी सर्वदा पातु, सुन्दरी परि - रक्षतु ।

रक्त-वर्णा सदा पातु, सुन्दरी सर्व - दायिनी । नानालङ्कार - संयुक्ता, सुन्दरी पातु सर्वदा ।
सर्वाङ्ग-सुन्दरी पातु, सर्वत्र शिव-दायिनी । जगदाह्लाद-जननी, शम्भु-रूपा च मां सदा ।
सर्व-मन्त्र-मयी पातु, सर्व-सौभाग्य-दायिनी । सर्व-लक्ष्मी-मयी देवी, परमानन्द - दायिनी ।
पातु मां सर्वदा देवी, नाना-शङ्ख-निधिः शिवा । पातु पद्म-निधिर्देवी, सर्वदा शिव-दायिनी ।
दक्षिणामूर्तिर्मां पातु, ऋषिः सर्वत्र मस्तके । पंक्तिश्छन्दः - स्वरूपा तु, मुखे पातु सुरेश्वरी ।
गन्धाष्टकात्मिका पातु, हृदयं शाङ्करी सदा । सर्व-सम्मोहिनी पातु, पातु संक्षोभिणी सदा ।
सर्व-सिद्धि-प्रदा पातु, सर्वाकर्षण - कारिणी । क्षोभिणी सर्वदा पातु, वशिनी सर्वदाऽवतु ।
आकर्षणी सदा पातु, सम्मोहिनी सर्वदाऽवतु । रतिर्देवी सदा पातु, भगाङ्गा सर्वदाऽवतु ।
माहेश्वरी सदा पातु, कौमारी सदाऽवतु । सर्वाह्लादन - करी मां, पातु सर्व - वशङ्करी ।
क्षेमङ्करी सदा पातु, सर्वाङ्ग-सुन्दरी तथा । सर्वाङ्ग - युवतिः सर्वं, सर्व-सौभाग्य-दायिनी ।
वाग्-देवी सर्वदा पातु, वाणिनी सर्वदाऽवतु । वशिनी सर्वदा पातु, महा-सिद्धि-प्रदा सदा ।
सर्व-विद्राविणी पातु, गण - नाथः सदाऽवतु । दुर्गा देवी सदा पातु, वटुकः सर्वदाऽवतु ।
क्षेत्र-पालः सदा पातु, पातु चावीर-शान्तिका । अनन्तः सर्वदा पातु, वराहः सर्वदाऽवतु ।
पृथिवी सर्वदा पातु, स्वर्ण - सिंहासनं तथा । रक्तामृतं च सततं, पातु मां सर्व - कालतः ।
सुरार्णवः सना पातु, कल्प - वृक्षः सदाऽवतु । श्वेतच्छत्रं सदा पातु, रक्त - दीपः सदाऽवतु ।
नन्दनोद्यानं सततं, पातु मां सर्व-सिद्धये । दिक्-पालाः सर्वदा पान्तु, द्वन्द्वौघाः सकलास्तथा ।
वाहनानि सदा पान्तु, अस्त्राणि पान्तु सर्वदा । शस्त्राणि सर्वदा पान्तु, योगिन्यः पान्तु सर्वदा ।
सिद्धा पान्तु सदा देवी, सर्व-सिद्धि-प्रदाऽवतु । सर्वाङ्ग-सुन्दरी देवी, सर्वदा पातु मां तथा ।
आनन्द-रूपिणी देवी, चित्-स्वरूपां चिदात्मिका । सर्वदा सुन्दरी पातु, सुन्दरी भव-सुन्दरी ।
पृथग् देवालये घोरे, सङ्कटे दुर्गमे गिरौ । अरण्ये प्रान्तरे वाऽपि, पातु मां सुन्दरी सदा ।

।। फल-श्रुति ।।

इदं कवचमित्युक्तो, मन्त्रोद्धारश्च पार्वति ! य पठेत् प्रयतो भूत्वा, त्रि-सन्ध्यं नियतः शुचिः ।
तस्य सर्वार्थ - सिद्धिः स्याद्, यद्यन्मनसि वर्तते । गोरोचना - कुंकुमेन, रक्त - चन्दनेन वा ।
स्वयम्भू - कुसुमैः शुक्लैर्भूमि-पुत्रे शनौ सुरै । श्मशाने प्रान्तरे वाऽपि, शून्यागारे शिवालये ।
स्व-शक्त्या गुरुणा मन्त्रं, पूजयित्वा कुमारिकाः । तन्मनुं पूजयित्वा च, गुरु-पंक्ति तथैव च ।
देव्यै बलिं निवेद्याथ, नर - मार्जार - शूकरैः । नकुलैर्महिषैर्मेषैः, पूजयित्वा विधानतः ।
धृत्वा सुवर्ण-मध्यस्थं, कण्ठे वा दक्षिणे भुजे । सु - तिथौ शुभ - नक्षत्रे, सूर्यस्योदयने तथा ।
धारयित्वा च कवचं, सर्व-सिद्धि लभेन्नरः ।

कवचस्य च माहात्म्यं, नाहं वर्ष-शतैरपि । शक्नोमि तु महेशानि ! वक्तुं तस्य फलं तु यत् ।
न दुर्भिक्ष-फलं तत्र, न चापि पीडनं तथा । सर्व-विघ्न-प्रशमनं, सर्व - व्याधि-विनाशनम् ।
सर्व-रक्षा-करं जन्तोः, चतुर्वर्ग - फल - प्रदम्, मन्त्रं प्राप्य विधानेन, पूजयेत् सततः सुधीः ।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये, कवचं देव-रूपिणम् ।
गुरोः प्रसादमासाद्य विद्यां प्राप्य सुगोपिताम् । तत्रापि कवचं दिव्यं, दुर्लभं भुवन-त्रयेऽपि ।
श्लोकं वास्तवमेकं वा, यः पठेत् प्रयतः शुचिः । तस्य सर्वार्थ-सिद्धिः, स्याच्छङ्करेण प्रभाषितम् ।
गुरुर्देवो हरः साक्षात्, पत्नी तस्य च पार्वती । अभेदेन यजेद् यस्तु, तस्य सिद्धिरदूरतः ।

।। इति श्री रुद्र-यामले भैरव-भैरवी-सम्वादे श्रीत्रिपुर-भैरवी-कवचं सम्पूर्णम् ।।

(७१)

श्री वाराही-कवचम्

विनियोग—ॐ अस्य श्रीवाराही-कवच-मन्त्रस्य श्रीत्रिलोचन-ऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, श्रीआदि - वाराही - देवता, ग्लैं वीजं, स्वाहा शक्तिः, ऐं कीलकं, अभीष्ट - सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीत्रिलोचन-ऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप् - छन्दसे नमः मुखे, श्रीआदि-वाराही-देवतायै नमः हृदि, ग्लैं वीजं नमः गुह्ये, स्वाहा - शक्तये नमः नाभौ, ऐं कीलकाय नमः पादयोः, अभीष्ट-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

ध्यात्वेन्द्र-नील-वर्णाभां, चन्द्र-सूर्याग्नि-लोचनां । विधि-विष्णु-सुरेन्द्रादि-मातृ-भैरव-सेविताम् ।
हार-नूपुर-केयूर-वलयैरुप - शोभितां । ज्वलन्मणि - गण - प्रोत - मुकुटोज्ज्वल - शोभिताम् ।
शस्त्राण्यस्त्राणि सर्वाणि, स्व-कार्य-करणानि च । करैः समस्तैर्विविधैर्विभ्रतीं मुशलं हलम् ।
वाराही-देवि-कवचं, भुक्ति-मुक्ति-फल-प्रदं । पठेत् त्रिसन्ध्यं रक्षार्थं, रोग - शत्रु - निकृन्तये ।

मेघ-श्याम-रुचिं मनोहर-कुचां नेत्र-त्रयोद्भासिताम्,
कोलास्यां शशि-शेखरामचलितैः दंष्ट्रा-तलैः शोभिताम् ।
बिभ्राणां स्व-कराम्बुजै रसि-लतां चर्मासि-पाशं सृणिम्,
वाराहीमनु-चिन्तये ध्रुव - वरारूढां शुभालंकृतिम् ।।

ॐवर्ताली मे शिरः पातु, वाराही भालमुत्तमं । नेत्रे वराह-वदना पातु, कर्णौ तथाऽन्धिनी ।
रुन्धिनी नासिका पातु, मुखं पातु सुजम्भिनी । पातु मे मोहिनी जिह्वां, स्तम्भिनी कण्ठमादरात् ।

स्कन्धौ तु पञ्चमी पातु, भ्रुवौ महिष-वाहिनी । सिंहारूढा करौ पातु, कुक्षौ कृष्ण-मुखी सदा ।
हलायुधं च वक्षश्च, मध्यमे मुशली मम । नाभिं तु शङ्खिनी पातु, पृष्ठ - देशे तु चक्रिणी ।
खड्गिनी पातु कट्यां तु, मेढ्रयोः पातु खेटकी । गुदं च क्रोडिनी पातु, जघनं स्तम्भिनी तथा ।
चण्डोच्चण्डा च ऊरू च, जानुनी शत्रु-मर्दिनी । जङ्घा-द्वयोर्भद्र-काली, चामुण्डा गुल्फयोर्द्वयोः ।
पादौ तदंगुलीश्चैव, पातु चोन्मत्त - भैरवी । सर्वाङ्गं सततं पातु, काल - सन्दीपनी मम ।
वाराही-कवचं दिव्यं, सर्व-सिद्धि-प्रदायकम् । सर्व-शत्रु-क्षय-करं सर्व - कार्य - करं शुभम् ।

(७२)

श्री पद्मावती-अष्टकम्

श्रीमद्-गीर्वाण-चक्र-स्फुट-मुकुट-तटी दिव्य - माणिक्य - माला ।
ज्योतिर्ज्वाला कराला स्फुरित मकरिका घृष्ट पादारविन्दे !
व्याघ्रोरुल्का सहस्र ज्वलदनल शिखा लोल पाशांकुशाग्रे ।
आं क्रौं ह्रीं मन्त्र- रूपे क्षपति कलि-मले रक्ष मां देवि पद्मे ।।१

विधि—(१) **'आं क्रौं ह्रीं'** इस मूल-मन्त्र को पाप - नाश के निमित्त १२१ बार नित्य रुद्राक्ष-माला से जपे एवं इस श्लोक से प्रार्थना करे । (२) **'मत्स्य-यन्त्र'** चन्दन से लिख कर, उस पर उक्त मन्त्र का अयुत जप एवं १२१ आवृत्ति उक्त श्लोक-पाठ करे, तो कार्य-सिद्धि हो । (३) **'गीर्वाण-यन्त्र'** अङ्कित कर, उक्त मन्त्र से अयुत एवं उक्त श्लोक से १२१ बार अभिमन्त्रित कर, सिर पर बाँधे, तो भूत-प्रेत-पिशाच-दैत्य-राक्षस-गन्धर्व-किन्नरादि के उपद्रव दूर हों ।

विशेष—इस मन्त्र का प्रयोग सर्वदा मास के दूसरे शनिवार से प्रारम्भ करे ।

भित्वा पाताल - मूलं चल चलि चलतं व्याल लीला कराले ।
विद्युद् - दण्डं प्रचण्डं - प्रहरण सहिते सद्-भुजैस्तर्जयन्ती !
दैत्येन्द्रं क्रूर - दंष्ट्रा कट कट घटिते स्पष्ट भीमाट्टहासे ।
माया जीमूत माला कुहरित गगने रक्ष मां देवि पद्मे ।।२

विधि—इस श्लोक से जल अभिमन्त्रित कर, प्रोक्षण करने से भूत-प्रेत-पिशाचादि उपद्रव दूर होते हैं । किन्नर-यक्षादि के उपद्रव-स्वरूप अग्नि, अस्थि आदि की वर्षा होती हो, तो बन्द होती है । मास के द्वितीय शनिवार से प्रारम्भ कर, प्रथम अयुत जप कर ले ।

कूजत् - कोदण्ड - काण्डोड्डमर विधुरता क्रूर घोरोपसर्गान् ।
दिव्यं वज्रात - पत्रं प्रगुणमणिरणत् किङ्किणी क्वाण रम्यम् ।
भास्वद्-वैडूर्य - दण्डं मदन - विजयिनं भूतिदं पार्श्व - नाथम् ।
सा देवी पद्म - हस्ता विघटयतु महा - डामरं मामकीनम् ।।३

विधि—इस श्लोक से प्रातः अपनी शिखा में तीन गाँठ लगावे, तो पर-कृत अभिचारादि नष्ट होवें ।

भृङ्गी काली कराली परिजन - सहिते चण्ड - चामुण्ड नित्ये ।
क्षां क्षीं क्षूं क्षः क्षणार्द्धं - क्षित रिपु-निवहे ह्रीं महा-मन्त्र वश्ये ।
भ्रां भ्रीं भ्रूं भ्रः भङ्गसङ्गं भ्रकुटि पुट-तटी त्रासितोद्-दाम दैत्ये ।
ड्रां ड्रीं ड्रूं ड्रः प्रचण्डे स्तुत मुखरे रक्ष मां देवि पद्मे ।।४

विधि--(१) 'ॐ ह्रीं भृङ्गी क्षां, ॐ ह्रीं भृङ्गी क्षीं, ॐ ह्रीं भृङ्गी क्षूं, ॐ ह्रीं भृङ्गी क्षः'—

(अ) शनिवार अमावास्या के दिन या ग्रहण में पद्मासन से बैठकर, रुद्राक्ष-माला से 'जप' करे, तो शत्रु-नाश हो । (ब) 'गर्दभ-दन्त-माला' से तीन दिन में अयुत जप करे, तो सकुटुम्ब वैरी-नाश हो ।

(२) 'ॐ ह्रीं काली भ्रां, ॐ ह्रीं काली भ्रीं, ॐ ह्रीं काली भ्रूं, ॐ ह्रीं काली भ्रः'—

'केश-माला' से ६ मास जप करने से दैत्य प्रसन्न हो। पुनः अर्ध-रात्रि में २१ बार जप करे, तो स्वप्न में दर्शन हो ।

(३) 'ॐ ह्रीं कराली ड्रां, ॐ ह्रीं कराली ड्रीं, ॐ ह्रीं कराली ड्रूं, ॐ ह्रीं कराली ड्रः'—

'प्रवाल-माला' से तीन दिन में २१ हजार जप रात्रि में करे, तो कराली नामक शक्ति मुख में प्रवेश करे ।

चञ्चत् - काञ्ची कलापे स्तन तट विलसत् तार - हारावलीके ।
प्रोत्-फुल्लोत्-पारिजात द्रुम कुसुम महा - मञ्जरी पूज्य - पादे ।
ह्रीं द्रीं क्लीं ब्लीं समेते भुवन-वश-करी क्षोभिणी द्राविणी त्वं ।
आं क्रौं ऐं ॐ पद्म - हस्ते कुरु - कुरु घटने रक्ष मां देवि पद्मे ।।५

विधि—'ॐ ह्रीं आं ह्रीं ॐ ह्रीं क्रौं द्रीं ॐ ह्रीं ऐं क्लीं ॐ ह्रीं ॐ ब्लीं'—आवाहन वशीकरणार्थ 'जप' करे ।

लीला-व्यालोल-नीलोत्पल-दल-नयने प्रज्ज्वलद् - वाडवाग्निः ।
वुट्यज्ज्वाला - स्फुलिङ्ग - स्फुरदरुण - करोदग्र - वज्राग्र - हस्ते !
ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः हरन्ता हर ह-ह ह-ह हुङ्कार-भीमैक-नादे !
पद्मे, पद्मासनस्थे ! व्यपनय दुरितं देवि ! देवेन्द्र - वन्द्ये ! ।।६

विधि—'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः हर हर ह-ह ठः ठः'—उपसर्ग एवं अपराध-नाश के लिए एकाग्र होकर 'जप' करे ।

प्रातर्बालार्क - रश्मिच्छुरित - घन - महा - सान्त - सिन्दूर - धूली ।
सन्ध्या - रागारुणाङ्गी - त्रि-दश - वर - वधू - वन्द्य - पादारविन्दे !
वञ्चच्चण्डासि - धारा हरति रिपु - कुलं कुण्डलोत्-घृष्ट-गण्डे !
स्रां स्रीं स्रूं स्रः स्मरन्ती मद-गज-गमने रक्ष मां देवि, पद्मे ! ।।७

विधि—'ॐ स्रां ॐ स्रीं ॐ स्रूं ॐ स्रः'—छः मास, सन्ध्या में जप कर, विष-गुच्छा के फूल २१ बार अभिमन्त्रित कर, शत्रु-शय्या पर डाले, तो शत्रु का नाश हो ।

गर्जन्नीरद - गर्भ - निर्गत - तडिज्ज्वाला - सहस्र - स्फुरत् ।
सद् - वज्रांकुश - पाश - पङ्कज - करा भक्तचामरैरर्चिता ।
सद्यः पुष्पित - पारिजात - रुचिरं दिव्यं वपुर्बिभ्रती ।
सा मां पातु सदा प्रसन्न - वदना पद्मावती देवता ।।८

विधि—इस श्लोक का 'जप' करने से अवृष्टि दूर होती है । 'विलोम - जप' से अधिक वर्षा रुक कर शान्ति और सुभिक्ष होता है ।

(७३)

श्री कार्तवीर्यार्जुन यन्त्र-साधना

श्रीकार्तवीर्यार्जुन-यन्त्र की साधना **'सर्वतो-भद्र-पीठ'** या **'वैष्णव - पीठ'** पर होती है । **'सर्वतो-भद्र-पीठ'** की रचना तथा पूजा का विधान 'हिन्दी तन्त्रसार' ग्रन्थ से प्राप्त किया जा सकता है । इस पीठ पर वैष्णवी - शक्ति का पूजन गन्ध-पुष्पाक्षत से करना चाहिए—**'सम्पूज्य वैष्णवी-शक्तिस्तत्रावाह्यार्चयेन्नृपम् ।'**

'सर्वतो-भद्र-पीठ' की पूजा के बाद पीठ-देवताओं की पूजा करे । प्रत्येक मन्त्र के आदि में 'ॐ' और अन्त में **'नमः'** जोड़ ले । यथा—

ॐ आधार-शक्तये नमः । प्रकृतये, कूर्माय, शेषाय, अनन्ताय, पृथिव्यै, क्षीर-सागराय, श्वेत-द्वीपाय, मणि-मण्डपाय, कल्प-वृक्षाय, मणि-वेदिकायै, रत्न सिंहासनाय, धर्माय, ज्ञानाय, वैराग्याय, ऐश्वर्याय, अधर्माय, अज्ञानाय, अवैराग्याय, अनैश्वर्याय, अनन्ताय, पद्माय, सूर्य-मण्डलाय, चन्द्र-मण्डलाय, अग्नि-मण्डलाय, सत्त्वाय, रजसे, तमसे, आत्मने, अन्तरात्मने, परमात्मने, ज्ञानात्मने, पर-तत्त्वाय ।

इसके बाद नौ वैष्णवी-शक्तियों का पूजन करे । यथा—

ॐ विमलायै नमः । उत्कर्षिण्यै, ज्ञानायै, क्रियायै, भोगायै, प्रह्व्यै, सत्यायै, ईशानायै, अनुग्रहायै ।

अब निम्न मन्त्र से पीठ का पूजन करे—

ॐ नमो भगवते सकल-गुणात्म-शक्ति-युक्ताय अनन्ताय, योग-पीठात्मने नमः ।

इसके बाद पुष्प-रूप आसन देकर मूल-मन्त्र से '**यन्त्र**' स्थापित कर प्राण-प्रतिष्ठा करे । तब 'यन्त्र' के कोष्ठकों में अङ्कित संख्या के अनुसार निम्न नाम - मन्त्रों से गन्ध-पुष्पाक्षत द्वारा पूजन करे—

१ ॐ **आं फ्रों व्रीं हृदयाय नमः । २ ॐ ईं क्लीं त्रूं शिरसे स्वाहा । ३ ॐ हुं आं ह्लीं शिखायै वषट् । ४ ॐ क्रैं क्रों श्रीं कवचाय हुम् । ५ ॐ हुं फट् अस्त्राय फट् । ६ ॐ फ्रां हृदयाय नमः । ७ ॐ फ्रीं शिरसे स्वाहा । ८ ॐ फ्रूं शिखायै वषट् । ९ ॐ फ्रैं कवचाय हुम् । १० ॐ फ्रौं नेत्र-त्रयाय वौषट् । ११ ॐ फ्रः अस्त्राय फट् ।**

अब प्रत्येक मन्त्र के आदि में 'ॐ' और अन्त में 'नमः' लगाकर पूजन करे । यथा—

१२ ॐ चोर-मद-विभञ्जनाय नमः, १३ मारी-मद-विभञ्जनाय, १४ अरि-मद-विभञ्जनाय, १५ दैत्य-मद-विभञ्जनाय, १६ दुःख-नाशाय, १७ दुष्ट-नाशाय, १८ दुरित-नाशाय, १९ रोग - नाशाय, २० क्षेमङ्कर्यै, २१ वश्य - कर्यै, २२ श्री-कर्यै, २३ यशस्कर्यै, २४ आयुष्कर्यै, २५ प्रज्ञा-कर्यै, २६ विद्या-कर्यै, २७ धन-कर्यै, २८ लं इन्द्राय, २९ रं अग्नये, ३० मं यमाय, ३१ क्षं निर्ऋतये, ३२ वं वरुणाय, ३३ यं वायवे, ३४ सं सोमाय, ३५ हं ईशानाय, ३६ आं ब्रह्मणे, ३७ ह्लीं अनन्ताय, ३८ वं वज्राय, ३९ शं शक्तये, ४० दं दण्डाय, ४१ खं खड्गाय, ४२ पां पाशाय, ४३ अं अंकुशाय, ४४ गं गदायै, ४५ शूं शूलाय, ४६ पं पद्माय, ४७ चं चक्राय ।

अब '**पुरुष-सूक्त**' से षोडशोपचार पूजा करे । तब '**ॐ नमो भगवते कार्तवीर्याय हरेः सुदर्शन-चक्रावताराय नमः**' से पुष्पाञ्जलि दे ।

(७४)

गन्धर्व-राज विश्वावसु की पूजा-पद्धति

—श्री भैरवानन्दनाथ, सागर (म० प्र०)

गन्धर्व-राज विश्वावसु की उपासना मुख्यतः 'वशीकरण' और 'विवाह' के लिए की जाती है। स्त्री-वशीकरण और विवाह के लिए इनके प्रयोग अव्यर्थ हैं। एकदम अयोग्य यथा—विकलाङ्ग, कञ्जूस, वृद्ध और दुर्बल लोगों का भी विवाह, इनकी कृपा से अकल्पनीय ढङ्ग से अत्यन्त सुन्दर, सुशील और सुशिक्षित कन्या से हो जाता है। ऐसे कई प्रसङ्ग स्वयं देखे हैं।

यहाँ इनका **'कवच'** भी साथ में दिया जा रहा है। **'कवच - पाठ'** के अधिकारी केवल 'कुलाचारी' साधक ही हैं। अन्यों को केवल **'मन्त्र का जप'** ही करना चाहिए। 'कवच' के साथ, भगवती श्रीबाला-त्रिपुर-सुन्दरी के **'युग्म-स्तोत्र'** का नित्य-पाठ करने का विधान भी है किन्तु दुर्भाग्य-वश यह स्तोत्र मेरे पास नहीं है। यदि किन्हीं सज्जन के पास **'युग्म-स्तोत्र'** हो, तो **'चण्डी'** में प्रकाशित करवाने की कृपा करें। हम उनके अत्यन्त आभारी होंगे।

विशेष ज्ञातव्य—(१) **'मन्त्र-साधना'** सभी कर सकते हैं, किन्तु **'कवच का पाठ'** केवल **'कुलाचारी साधक'** ही कर सकते हैं। (२) यह साधना केवल पुरुषों के लिए है। (३) मात्र कौतूहल या वासना-पूर्ति के लिए 'प्रयोग' न करें। (४) केवल पुस्तक में देख कर साधना न करे। अपने श्रीगुरु - देव की अनुमति लेकर ही करे। (५) कुलाचारी साधक मद्य - मांसादि का कल्पोक्त विधि से शोधन करने के बाद, 'कवच' में दिए गए गायत्री मन्त्र से १० बार अभिमन्त्रित करके सेवन करे तथा ताम्बूल खाकर, उच्छिष्ट-मुख से पाठ करे।

मन्त्र—**ॐ विश्वावसु-गन्धर्व-राज-कन्या-सहस्रमावृत ! ममाभिलषितां अमुकीं कन्यां प्रयच्छ स्वाहा ।।**

विनियोग—**ॐ अस्य श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राज-मन्त्रस्य श्रीरुद्र-ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राजः देवता, ह्रीं बीजं, स्वाहा शक्तिः, श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राज-प्रीति-पूर्वक ममाभिलषितां अमुकीं कन्यां प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगः ।।**

ऋष्यादि - न्यास—श्रीरुद्र - ऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप् - छन्दसे नमः मुखे । श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राज-देवतायै नमः हृदि । ह्लीं-बीजाय नमः गुह्ये । स्वाहा-शक्तये नमः पादयोः । श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राज-प्रीति-पूर्वक ममाभिलषितां अमुकीं कन्यां प्राप्त्यर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

कराङ्ग-न्यास—ॐ ह्लां अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्लीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ ह्लूं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ ह्लैं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ह्लौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्लः करतल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः ।

षडङ्ग-न्यास—ॐ ह्लां हृदयाय नमः । ॐ ह्लीं शिरसे स्वाहा । ॐ ह्लूं शिखायै वषट् । ॐ ह्लैं कवचाय हुं । ॐ ह्लौं नेत्र-त्रयाय वौषट् । ॐ ह्लः अस्त्राय फट् ।

पुनः कराङ्ग-न्यास—ॐ ह्लां ॐ विश्वावसु अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्लीं गन्धर्व-राज तर्जनीभ्यां नमः । ॐ ह्लूं कन्या - सहस्रमावृत मध्यमाभ्यां नमः । ॐ ह्लैं ममाभिलषितां अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ह्लौं अमुकीं कन्यां कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्लः प्रयच्छ स्वाहा कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः ।।

इसी क्रम से 'षडङ्ग-न्यास' कर 'दिग्-बन्धन' करे । यथा—

दिग्-बन्धन—'ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ' से 'दिग्-बन्धन' करे। "ॐ रां रं रं तेजोज्ज्वल-प्रकाशाय नमः" से अपने चारों ओर तीन अग्नि - प्राकारों का ध्यान करे । फिर मूल-मन्त्र से तीन, पाँच या सात बार व्यापक न्यास करे । फिर अपने शरीर में पीठ-न्यास करे । यथा—

पीठ-न्यास—मं मण्डूकाय नमः मूलाधारे । कां कालाग्नि-रुद्राय नमः स्वाधिष्ठाने । कं कच्छपाय नमः हृदये । आं आधार-शक्तये नमः । कं कूर्माय नमः । धं धरायै नमः । क्षीं क्षीर-सागराय नमः । श्वें श्वेत-द्वीपाय नमः । कं कल्प-वृक्षाय नमः । मं मणि-प्राकाराय नमः । हें हेम-पीठाय नमः । (कच्छप से 'हेम-पीठ' तक का न्यास हृदय में होगा) । धं धर्माय नमः दक्ष - स्कन्धे । ज्ञां ज्ञानाय नमः वाम - स्कन्धे । वैं वैराग्याय नमः दक्ष-जानुनि । ऐं ऐश्वर्याय नमः वाम - जानुनि । अं अधर्माय नमः मुखे । अं अज्ञानाय नमः वाम-पार्श्वे । अं अवैराग्याय नमः नाभौ । अं अनैश्वर्याय नमः दक्ष-पार्श्वे ।

निम्न सभी मन्त्रों का हृदय में न्यास करे—अं अनन्ताय नमः । चं चतुर्विंशति-तत्त्वेभ्यो नमः । पं पद्माय नमः । आं आनन्द-कन्दाय नमः । सं सम्विन्नालाय नमः । विं

विकार-मय-केसरेभ्यो नमः । प्रं प्रकृत्यात्मक-पत्रेभ्यो नमः । पञ्चाशद्-वर्णाढ्य - कर्णिकायै नमः । सं सूर्य-मण्डलाय नमः । चं चन्द्र-मण्डलाय नमः । वैं वैश्वानर - मण्डलाय नमः । सं सत्त्वाय नमः । रं रजसे नमः । तं तमसे नमः । आं आत्मने नमः । अं अन्तरात्मने नमः । पं परमात्मने नमः । ज्ञां ज्ञानात्मने नमः । मां माया-तत्त्वात्मने नमः । कं कला-तत्त्वात्मने नमः । विं विद्या-तत्त्वात्मने नमः । पं पर-तत्त्वात्मने नमः ।।

हृदयस्थ अष्ट - दल में प्रादक्षिण्य-क्रम से और मध्य में पीठ - शक्तियों का न्यास करे—कां कान्त्यै नमः । प्रं प्रभायै नमः । रं रमायै नमः । विं विद्यायै नमः । मं मदनायै नमः । मं मदनातुरायै नमः । रं रम्भायै नमः । मं मनोज्ञायै नमः ।

कर्णिका में—ह्लीं सर्व-शक्ति-कमलासनाय नमः ।

अब हृदयस्थ पीठ पर 'ध्यान' करे । यथा—

१ कन्या-समूहैर्युव-चित्त-हारारूपै परितं उप-केतु-रूपम् ।
अम्भोज-ताम्बूल-करं युवानं गन्धर्व-पौढां वने स्मरामि ।।

२ ध्याये दिव्यं वर्त्ते रम्ये, युवानमति-सुन्दरम् ।
सेवितं कन्यका-वृन्दैः सुन्दरैः भूषितां सदा ।।
मुक्ता-हार-लसत्-पाणिः, पङ्कजैरति-शोभनैः ।
लीला - गृहीत - कमलैर्मधुरालाप - कारिभिः ।।

उपर्युक्त दो ध्यानों में से कोई एक ध्यान करके 'मानसिक-पूजन' करे । यथा—

लं पृथ्वी-तत्त्वात्मकं गन्धं श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राजाय विलेपयामि नमः (अधो-मुख कनिष्ठा एवं अंगुष्ठ से) । हं आकाश-तत्त्वात्मकं पुष्पं श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राजाय समर्पयामि नमः, (अधो-मुख तर्जनी एवं अंगुष्ठ से) । यं वायु-तत्त्वात्मकं धूपं श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राजाय आघ्रापयामि नमः (अधो-मुख तर्जनी एवं अंगुष्ठ मिलाकर वाम - स्तन पर १० बार भावना से धूप-पात्र रखे) । रं तेजस्तत्त्वात्मकं दीपं श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राजाय दर्शयामि नमः (ऊर्ध्व-मुख मध्यमा एवं अंगुष्ठ मिलाकर, दक्ष-स्तन पर १० बार भावना से दीप-पात्र रखे) । वं अमृत-तत्त्वात्मकं नैवेद्यं श्रीविश्वावसु - गन्धर्व - राजाय निवेदयामि नमः (ऊर्ध्व-मुख अनामिका एवं अंगुष्ठ से) । शं शक्त्यात्मकं ताम्बूलादिकं श्रीविश्वावसु-गन्धर्व-राजाय निवेदयामि नमः (ऊर्ध्व-मुख सभी अँगुलियों से) ।

इस प्रकार पूजन करके कमल (पद्म), ताम्बूल और योनि-मुद्रा दिखाकर, यथा-शक्ति 'जप' करके, **'गुह्यातिगुह्य'** आदि मन्त्र से 'जप'-फल का समर्पण करे ।

पुरश्चरण--१ लाख जप । अयुत (१०,०००) हवन घृत-मिश्रित लाजा से । सहस्र (१०००) तर्पण । शत (१००) मार्जन । दस (१०) ब्राह्मण-भोजन ।

प्रयोग—विधि-वत् पुरश्चरण करने के बाद 'प्रयोग' करे । यथा--

१ कल्पतरु के नीचे मणि-मण्डप में सिंहासन पर बैठे हुए, गन्धर्व-राज-विश्वावसु का ध्यान करते हुए जलाञ्जलि देकर, नित्य १०८ जप करने से एक मास में उत्तम आभूषणों से सुसज्जित 'कन्या' की प्राप्ति होती है ।

२ जल के किनारे अर्थात् नदी या तालाब के किनारे, इक्षु - क्षेत्र (गन्ने के खेत) अथवा कदली (केला) वन में मन्त्र का यथा-शक्ति 'जप' तथा दशांश 'हवन'--तिल और पायस से करने पर अभीष्ट 'कन्या' प्राप्त होती है । यह भी १ मास का प्रयोग है ।

३ शाल-वृक्ष की लकड़ी की ११ अंगुल की कील १००८ बार अभिमन्त्रित कर, अभीष्ट 'कन्या' के घर में रखने से वह 'कन्या' प्राप्त होगी ।

४ मन्त्र में से 'अमुकी' पद अलग करके 'जप' करने से सबका आकर्षण होता है ।

(७५)

पंच-मुखी हनुमत्स्तोत्र-विधान

विनियोग—ॐ अस्य श्रीपञ्च-मुख-हनुमत् - मन्त्रस्य श्रीरामचन्द्र ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः । पञ्च-मुख-वीर-हनुमान् देवता । हनुमानिति वीजम् । वायु - पुत्र इति शक्तिः । अञ्जनी-सुत इति कीलकम् । श्रीराम-दूत-हनुमत्-प्रसाद-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

ऋष्यादि-न्यास—ॐ श्रीरामचन्द्र-ऋषये नमः शिरसि । अनुष्टुप्-छन्दसे नमः मुखे । पञ्च-मुख-वीर-हनुमद् - देवतायै नमः हृदि । हनुमानिति वीजाय नमः गुह्ये । वायु - पुत्र इति शक्तये नमः पादयोः । अञ्जनी - सुत इति कीलकाय नमः नाभौ । श्रीराम-दूत-हनुमत्-प्रसाद-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

कर-न्यास—ॐ अञ्जनी-सुताय अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ रुद्र-मूर्तये तर्जनीभ्यां नमः । ॐ वायु-पुत्राय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ अग्नि-गर्भाय अनामिकाभ्यां नमः । ॐ राम - दूताय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ पञ्च-मुख-हनुमते कर-तल-कर-पृष्ठाभ्यां नमः ।

षडङ्ग-न्यास—ॐ अञ्जनी - सुताय हृदयाय नमः । ॐ रुद्र-मूर्तये शिरसे स्वाहा । ॐ वायु-पुत्राय शिखायै वषट् । ॐ अग्नि-गर्भाय कवचाय हुम् । ॐ राम-दूताय नेत्र-त्रयाय वौषट् । ॐ पञ्च-मुख-हनुमते अस्त्राय फट् ।

ध्यान—वन्दे - वानर-नारसिंह-खग-राट्-क्रोडास्य-वक्त्रान्वितम्,
दिव्यालङ्करणं त्रि - पञ्च - नयनं देदीप्य - मानं रुचा ।
हस्ताब्जैरसि-खेट-पुस्तक - सुधा - कुम्भांकुशाद्रीन् हलम्,
खट्वाङ्गं फणि - भू - रुहं दश - भुजं सर्वारि-वीरापहम् ।।

मूल-मन्त्र—ॐ राम-दूताय आञ्जनेयाय वायु-पुत्राय महा-बल-पराक्रमाय सीता-दुःख-निवारणाय लङ्का-दहन-कारणाय महा-बल-प्रचण्डाय फल्गुन-सखाय कोलाहल-सकल-ब्रह्माण्ड-विश्व-रूपाय सप्त-समुद्र-नीरालङ्घनाय पिङ्गल - नयनाय अमित - विक्रमाय सूर्य-बिम्ब-फल-सेवनाय दुष्ट-निबर्हणाय दृष्टि-निरालंकृताय सञ्जीविनी - सञ्जीविता अङ्गद-लक्ष्मण-महा-कपि-सैन्य-प्राणाय दश-कण्ठ-विध्वंसनाय रामेष्टाय फल्गुन-महा-सखाय सीता-सहित-राम-वर-प्रदाय षट्-प्रयोगाङ्ग-पञ्च-मुखी-वीर-हनुमते नमः ।

दिग्-बन्ध—ॐ ह्रीं हरि-मर्कट-मर्कटाय वं-वं-वं-वं-वं वौषट् स्वाहा ।।१।। ॐ ह्रीं हरि-मर्कट-मर्कटाय फं-फं-फं-फं-फं फट् स्वाहा ।।२।। ॐ ह्रीं हरि-मर्कट-मर्कटाय खें-खें-खें-खें-खें मारणाय स्वाहा ।।३।। ॐ ह्रीं हरि-मर्कट-मर्कटाय लुं-लुं-लुं-लुं-लुं आकर्षित-सकल-सम्पत् - कराय स्वाहा ।।४।। ॐ ह्रीं हरि-मर्कट-मर्कटाय धं-धं-धं-धं-धं शत्रु - स्तम्भनाय स्वाहा ।।५।। ॐ ह्रीं हरि-मर्कट-मर्कटाय ठं-ठं-ठं-ठं-ठं कूर्म-मूर्तये पञ्च - मुख-वीर-हनुमते पर-यन्त्र-पर-तन्त्रोच्चाटनाय स्वाहा ।।६।। ॐ कं खं गं घं ङं । चं छं जं झं ञं । टं ठं डं ढं णं । तं थं दं धं नं । पं फं बं भं मं । यं रं लं वं । शं षं सं हं ळं क्षं स्वाहा ।।७

ॐ पूर्व-कपि-मुखाय पञ्च-मुख-हनुमते ठं-ठं-ठं-ठं-ठं सकल-शत्रु-संहारणाय स्वाहा । ॐ दक्षिण - मुखाय पञ्च-मुख-हनुमते कराल - वदनाय नृसिंहाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः सकल-भूत-प्रेत-दमनाय स्वाहा । ॐ पश्चिम-मुखाय वीर-गरुडाय पञ्च-मुख-हनुमते मं-मं-मं-मं-मं सकल-विष-हराय स्वाहा । ॐ उत्तर-मुखाय आदि-वराहाय लं-लं-लं-लं-लं नृसिंहाय नील-कण्ठ-मूर्तये पञ्च-मुख-हनुमते स्वाहा । ॐ ऊर्ध्व - मुखाय हयग्रीवाय रुं-रुं-रुं-रुं-रुं रुद्र-मूर्तये सकल-प्रयोजन-निर्वाहकाय स्वाहा । ॐ अञ्जनी-सुताय वायु - पुत्राय महा - बलाय सीता-शोक-निवारणाय लक्ष्मण-प्राण - रक्षकाय दश-ग्रीव-पीडा-कराय श्रीरामचन्द्र-पादुका-

धराय महा-वीर्याय प्रमथनाय ब्रह्माण्ड-नाथाय कामदाय पञ्च-मुख-वीर-हनुमते स्वाहा। भूत-प्रेत-पिशाच-ब्रह्म-राक्षस-शाकिनी - डाकिन्यन्तरिक्ष - ग्रह - पर-यन्त्र पर-तन्त्रोच्चाटनाय स्वाहा। सकल - प्रयोजन - निर्वाहकाय पञ्च - मुख - वीर - हनुमते श्रीरामचन्द्र-वर-प्रदाय जं-जं-जं-जं-जं स्वाहा।

॥ फल-श्रुति ॥

एक-वारं जपेत् स्तोत्रं, सर्व-शत्रु-निवारणम्, द्वि-वारं तु पठेन्नित्यं, पुत्र-पौत्र-प्रवर्धनम्। त्रि-वारं च पठेन्नित्यं, सर्व-सम्पत् - करं शुभम्, चतुर्वारं पठेन्नित्यं, सर्व-रोग-निवारणम्। पञ्च-वारं पठेन्नित्यं, सर्वं - लोक-वशङ्करम्, षड्-वारं च पठेन्नित्यं, सर्व-देव-वशङ्करम्। सप्त-वारं पठेन्नित्यं, सर्व - सौभाग्य-दायकम्, अष्ट-वारं पठेन्नित्यमिष्ट-कामार्थ-सिद्धिदम्। नव-वारं पठेन्नित्यं, राज्य-भोगं समाप्नुयात्, दश-वारं पठेन्नित्यं, त्रैलोक्य-ज्ञान-दर्शनम्। रुद्रावृत्तीः पठेन्नित्यं, सर्व-सिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्, कवच - स्मरणेनैव, महा-बलमवाप्नुयात्।

श्रीसुदर्शन-संहितायां श्रीपञ्च-मुख-हनुमत्-कवचं सम्पूर्णम्॥

—श्रीकृष्ण पिच्चुमणि अय्यङ्गार, श्रीरङ्गम् (तमिलनाडु)

(७६)

सरस्वती महा-स्तोत्र

[प्रस्तुत **'सरस्वती महा-स्तोत्र'** का **एक वर्ष तक पाठ करने** से मूर्ख व्यक्ति की भी मूर्खता दूर हो जाती है। **नित्य-पाठ** करने से पाठ-कर्त्ता मेधावी हो जाता है। यह महर्षि याज्ञवल्क्य का अनुभूत प्रयोग है —सं०]

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हत - तेजसम्।
गुरु-शापात् स्मृति-भ्रष्टं, विद्या-हीनं च दुःखितम्॥१

ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्याम्, शक्ति शिष्य-प्रबोधिनीम्।
ग्रन्थ - कर्तृत्व-शक्तिं च, सु-शिष्यं सु-प्रतिष्ठितम्॥२

प्रतिभां सत्-सभायां च, विचार - क्षमतां शुभाम् ।
लुप्तं सर्वं दैव - योगात्, नवी - भूतम् पुनः कुरु ॥३
यथांकुरं भस्मनि च, करोति देवता पुनः ।
ब्रह्म - स्वरूपा परमा, ज्योति - रूपा सनातनी ॥४
सर्व-विद्याधि - देवी या, तस्यै वाण्यै नमो नमः ।
विसर्ग - विन्दु - मात्रासु, यदधिष्ठानमेव च ॥५
तदधिष्ठात्री या देवी, तस्यै नीत्यै नमो नमः ।
व्याख्या-स्वरूपा सा देवी, व्याख्याऽधिष्ठात्री रूपिणी ॥६
यया विना प्रसंख्या - वान्, संख्यां कर्तुं न शक्यते ।
काल - संख्या - स्वरूपा या, तस्यै देव्यै नमो नमः ॥७
भ्रम - सिद्धान्त - रूपा या, तस्यै देव्यै नमो नमः ।
स्मृति - शक्ति-ज्ञान-शक्ति—बुद्धि - शक्ति - स्वरूपिणी ॥८
प्रतिभा - कल्पना - शक्तिः, या च तस्यै नमो नमः ।
सनत्कुमारो ब्रह्माणम्, ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै ॥९
बभूव मूक - वत्सोऽपि, सिद्धान्तम् कर्तुमक्षमः ।
तदा जगाम भगवान्, आत्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः ॥१०
उवाच स च तां स्तौहि, वाणीमिष्टां प्रजा - पते !
स च तुष्टाव तां ब्रह्मा, चाज्ञया परमात्मनः ॥११
चकार तत् - प्रसादेन, तदा सिद्धान्तमुत्तमम् ।
यदाऽप्यनन्तं पप्रच्छ, ज्ञानमेकं बसुन्धरा ॥१२
बभूव मूक - वत्सोऽपि, सिद्धान्तम् कर्तुमक्षमः ।
तदा तां स च तुष्टाव, सन्त्रस्त कश्यपाज्ञया ॥१३
ततश्चकार सिद्धान्तम्, निर्मलं भ्रम - भञ्जनम् ।
व्यासः पुराण - सूत्रं च, पप्रच्छ वाल्मीकिं यदा ॥१४
मौनी - भूतश्च संस्मार, तामेव जगदम्बिकाम् ।
तदा चकार सिद्धान्तम्, तद् वरेण मुनीश्वरः ॥१५

सम्प्राप्य निर्मलं ज्ञानं, भ्रमान्ध्य - ध्वंस - दीपकम् ।
पुराण-सूत्रं श्रुत्वा च, व्यासः कृष्ण - कुलोद्भवः ।।१६
तां शिवां वेददध्यौ च, शत-वर्षं च पुष्करे ।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य, सत्कवीन्द्रो बभूव ह ।।१७
तदा वेद-विभागं च, पुराणं च चकार सः ।
यदा महेन्द्रः पप्रच्छ, तत्त्व-ज्ञानं सदा - शिवम् ।।१८
क्षणं तामेव सञ्चिन्त्य, तस्मै ज्ञानं ददौ विभुः ।
पप्रच्छ शब्द - शास्त्रं च, महेन्द्रश्च वृहस्पतिम् ।।१६
दिव्यं वर्ष - सहस्रं च, स त्वां दध्यौ च पुष्करे ।
तदा त्वत्तो वरम् प्राप्य, दिव्य - वर्ष-सहस्रकम् ।।२०
उवाच शब्द - शास्त्रं च, तदर्थं च सुरेश्वरम् ।
अध्यापिताश्च ये शिष्याः, यैरधीतं मुनीश्वरैः ।।२१
ते च तां परि - सञ्चिन्त्य, प्रवर्तन्ते सुरेश्वरोम् ।
त्वं संस्तुता पूजिता च, मुनीन्द्रैः मनु-मानवैः ।।२२
दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि, ब्रह्म - विष्णु - शिवादिभिः ।
जडी - भूतः सहस्रास्यः, पञ्च - वक्त्रश्चतुर्मुखः ।।२३
यां स्तोतुं किमहं स्तौमि, तामेकास्येन मानवः ।
इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च, भक्ति-नम्रात्म-कन्धरः ।।२४
प्रणनाम निराहारो, रुरोद च मुहुर्मुहुः ।
ज्योति-रूपा महा-माया, तेन दृष्टाऽप्युवाच तम् ।।२५
स कवीन्द्रो भवेत्युक्त्वा, वैकुण्ठं च जगाम ह ।
याज्ञवल्क्य - कृतम् वाणी, स्तोत्रमेतत् तु यः पठेत् ।।२६
स कवीन्द्रो महा - वाग्मी, वृहस्पति-समो भवेत् ।
महा-मूर्खश्च दुर्बुद्धिः, वर्षमेकं यदा पठेत् ।।२७
स पण्डितश्च मेधावो, सु-कवोन्द्रो भवेद् ध्रुवम् ।।२८

(श्रीमद्-देवी-भागवत, अ० ६-५)

विपरीत-प्रत्यंगिरा स्तोत्र-विधान

[८५ वर्षीय वयोवृद्ध सिद्ध - वैद्य पूज्य 'पण्डित कृष्णानन्द मिश्र' (ग्राम-ककरा, जि० इलाहाबाद) के पास संगृहीत दुर्लभ तन्त्र-साहित्य में से यह अनूठा विधान प्राप्त हुआ है। विधान सरल संस्कृत भाषा में है। आशा है, पाठक इसे स्वयं या अपने गुरुदेव की सहायता से समझ लेने को कृपा करेंगे। जो बन्धु इससे लाभ उठाएँ, वे कपया अपना अनुभव प्रकाशनार्थ लिखकर भेजेंगे। धन्यवाद।—सम्पादक]

उदुम्बर-पत्र-खण्डेषु अकारादि-क्षकारान्तान् मातृका-वर्णान् पृथक्-पृथक् लिखित्वा **'वर्ण--मातृकेभ्यो नमः'** इति गन्धाक्षत-पुष्पैरभ्यर्च्य उदुम्बर-समिद्भिः ज्वलितेऽग्नौ तत्-पत्राक्षरमुच्चरन् घृताक्तं स्वाहाऽन्तेन जुहुयात्।

अभिचार-हरो होमः सर्व-रक्षा-प्रसिद्धिदः। सहस्र - होम - वितरेद् दक्षिण-निष्क-मानतः, निष्को माष-चतुष्टयम्। अर्धं वा भक्तितो दद्यात्, तदप्यर्थोक्त-फलमाप्नुयात्।

मन्त्रः—'ॐ ह्रीँ यां कल्पयन्ति नोऽरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव तां ब्रह्मणऽपि निर्णयुः प्रत्य-कर्त्तारमृच्छतु ह्रीँ ॐ।' १०८ जपः।

'ॐ शाल्वेशाय विद्महे पक्षि-राजाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयत्'—अष्टोत्तर-शत-जपेनाभिचार-नाशः।

पर-तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र-विष - चूर्ण - सर्व - प्रयोगादीनन्येषां निर्वर्त्तयित्वा यत् कृतं तन्मे माऽस्तु। कालि पातिनि सर्व-हिंसामाकर्षिणी, अहितानां च नाशिनी, दुष्टानां च नाशिनी, यत् करोति यत् किञ्चित् करिष्यति, विरूपकं कारयति वाऽनुमोयति, मनसा वाचा कर्मणा ये देवासुर-राक्षसा तिर्यक्-प्रेत-सहिते सर्वे हिंसका विरूपकं कुर्वन्ति, मम तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र-विष-चूर्ण-सव-प्रयोगादीनां पर-हस्तेन (आत्म-हस्तेन वा) यः करोति, करिष्यति वा, तान् सर्वानन्येऽन्येषां निवर्त्तयित्वा पातयित्वा पातक-कारक-मस्तके।

॥ इति भैरवी-तन्त्रोक्त विपरीत-प्रत्यङ्गिरा स्तोत्रम् ॥

पर-कृत्या-निवृत्यर्थं विपरीत-प्रत्यङ्गिरा - स्तोत्र-पाठः कर्त्तव्यः, कारयितव्यो वा। 'अं आं इं ईं'—इत्यादि पत्र-खण्डेषु पृथक्-पृथक् विलिखेत्। लेखनमष्ट-गन्धेन प्रति - वर्णं सानुस्वारम्।

॥ इति विपरीत-प्रत्यङ्गिरा-स्तोत्र अभिचार-नाश-विधि-सहितः ॥

कार्तवीर्यार्जुन पूजा-यन्त्र

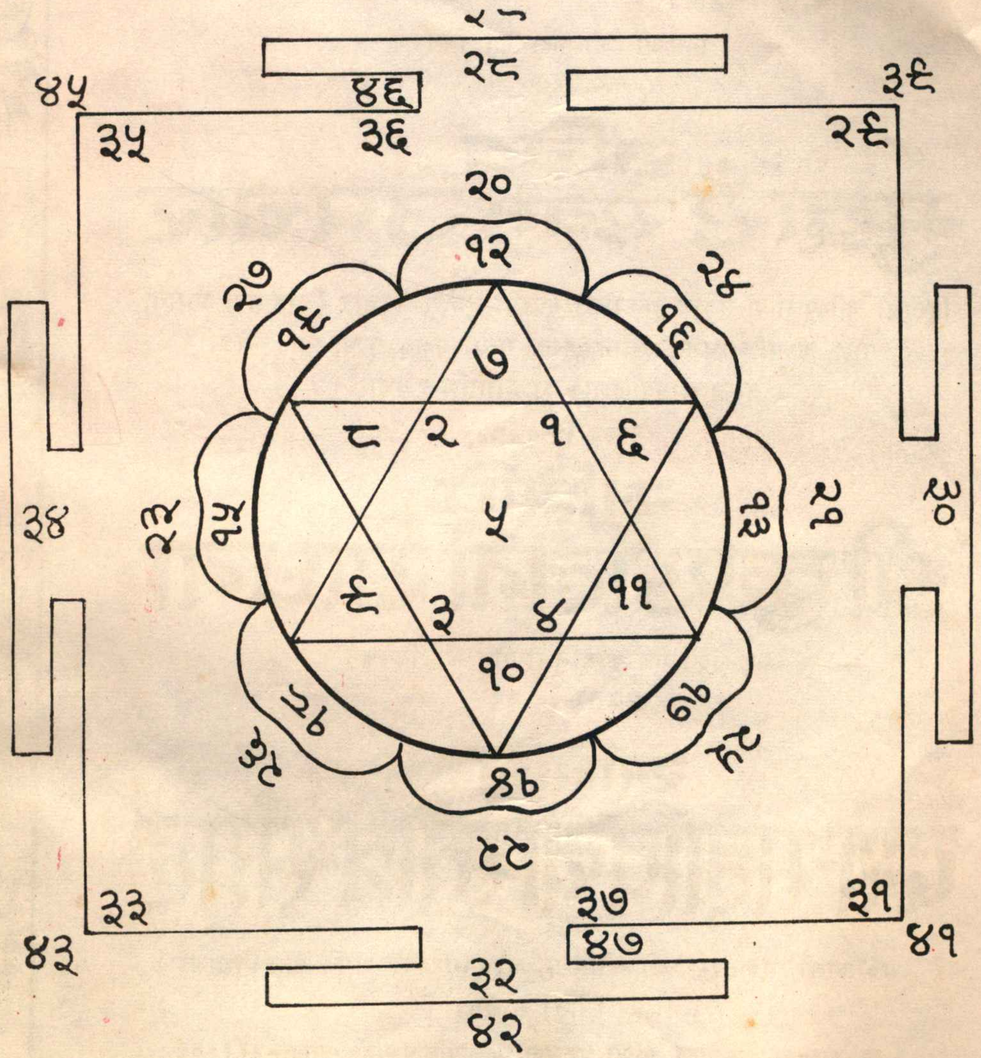

रजि० स० ३२९८१/५७ रजि०सं० एल०डी० ९६

साधनोपयोगी श्रेष्ठ पुस्तकें

पूजा-रहस्य

हिन्दुओं की पूजा का विवरण

मूल्य १५-०० रु०

सचित्र
मुद्राएँ एवम् उपचार

हिन्दुओं की पूजा में प्रयुक्त होनेवाली मुद्राओं एवं पूजोपचार (आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, नैवेद्य, ताम्बूल, प्रदक्षिणा) का प्रामाणिक वर्णन ।

मूल्य १५-०० रु०

सविधि
श्री कुण्डलिनि साधना

षट्-चक्रों एवं कुण्डलिनी-योग का विवेचन

मूल्य १५-०० रु०

सविधि
दश-महाविद्या स्तोत्र-संग्रह

भ० काली, भ० तारा, श्री श्रीविद्या, श्रीभुवनेश्वरी आदि महा-विद्याओं के स्तोत्रों के संग्रह

प्राप्ति-स्थान : कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—२११००६

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्रीऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, प्रयाग-२११ ००६